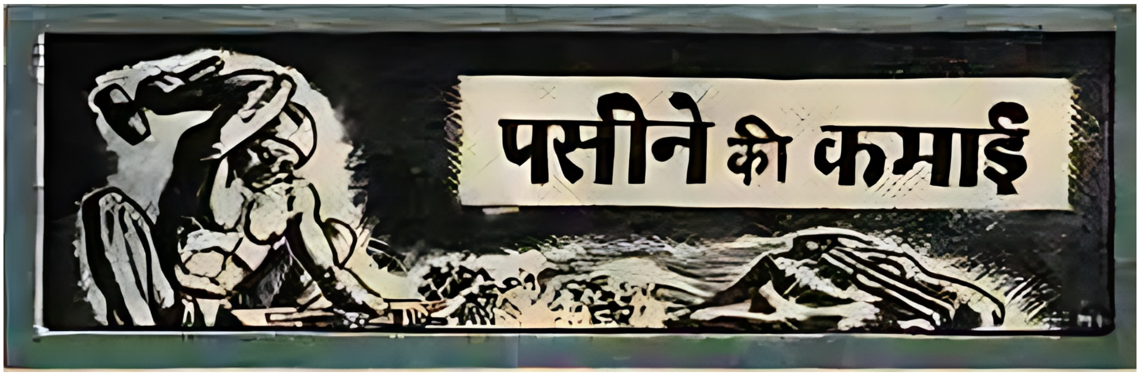
चन्दामामा

दीवाली विशेषांक





किसी गाँव में कचरू नाम का एक लुहार रहता था। वह अपनी दूकान में कुदाल खुरपी, हँसिया आदि बना कर बेचता था। लोहे के औज़ार बनाना कोई मामूली बात नहीं। भाथी चला कर भट्टी को धधकाना होता है और लोहे को खूब तपाना होता है जिससे वह लाल हो जाए। उस तपते हुए लोहे को निहाई पर रख कर हथोड़े से पीटना होता है। हथौड़ा उठाने के लिए काफी ताकत चाहिए। कचरू में ताकत भी थी और पसीना बहा कर कमाने का चाव भी था।

कचरू के लड़के का नाम कामू था। कामू बड़ा निठल्ला था। काम-काज का नाम सुनते ही उसकी नानी मर जाती थी। इसकी वजह उसकी माता थी। वह नहीं चाहती थी कि उसका बेटा लुहार का काम करे। उसकी इच्छा थी कि कामू भी अपने मामा की तरह पढ़-लिख कर बाबू बने और कोई नौकरी कर ले। इस इरादे से उसने किताब-पोथी खरीद दी और बेटे को स्कूल भेजा।

कचरू को यह सब पसन्द न था। यह चाहता था कि बेटा भी बाप-दादों का धन्धा करे। वह नहीं चाहता था कि बेटा बाबू बने। फिर भी उसने पत्नी की बात का विरोध नहीं किया।

कामू अब हर रोज स्कूल जाने लगा। लेकिन पढ़ना-लिखना उससे पार न लगता था। कभी-कभी कचरू कहता-"बेटा ! कम से कम भाथी तो चलाओ !"

लेकिन कामू उसकी बात पर कान न देता था। वह काम करने से ज्यादा मटरगश्ती पसन्द करता था। यहाँ तक कि अब बाप को कभी उसके दर्शन ही न होते थे।

धीरे-धीरे कचरू बूढ़ा हो गया। अब उसमें पहले की सी ताकत और फुर्ती न

हरनाथ



रही। एक दिन उसने बहुत चिन्तित होकर सोचा-"मेरे मरते ही दूकान बन्द हो जाएगी। मैने जो जिन्दगी भर कमाया, उसे मेरा खड़का तीन दिन में फेंक देगा। उसके बाद क्या करेगा वह ? भीख माँग कर पेट भरेगा ?"

आखिर उसने पत्नी को बुला कर कहा-"अरी ! तूने लड़के को निकम्मा बना कर छोड दिया। धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। अब भी उसे समझा दो जिससे वह बाप-दादों का धन्धा सीख ले।"

"अरे! तो जल्दी क्या आ पड़ी है। वह भी तो बिलकुल बेकार नहीं बैठा है। नौकरी ढूँढ रहा है। कभी न कभी लग ही जाएगी।" उसकी पत्नी ने लड़के का पक्ष लेते हुए कहा।

पत्नी की बातें सुन कर कचरू को बहुत गुस्सा आया। वह चिल्लाया-"नौकरी ! कौन देगा उस अभागे को नौकरी ? क्या तू जानती है कि पसीने की कमाई कैसी होती है ? शायद तेरा बेटा सोचता है कि मेरी कमाई से गुलछर्रें उड़ाए और बाबू बन कर घूमता फिरे। कह देना कि मुँह धो रखे। मैं अपनी कमाई से उसे कानी कौड़ी भी नहीं दूँगा। मैने आज तक किसी दिन तीन रुपए से कम नहीं कमाए। देखें, तेरा लाल तीन रुपये न सही; तीन चवन्नी भी तो कमा लाए।" क्रोध के मारे उसका सारा बदन काँप रहा था।

इतने में कामू घर आया। "देखो बेटा। तुम्हारे बाबूजी ने तुम्हें बिलकुल निकम्मा समझ लिया है। कहते हैं कि तू रोज चारह आने पैसे भी नहीं कमा सकता।" उसकी माता उससे बोली। "तो ऐसा कहो न? अनी कमा लाता हूँ।" यह कह कर कामू उलटे पाँव लौट गया। कामू ने गुस्से में डीङ्ग तो मारी। लेकिन उसे क्या मालूम था कि पैसा कैसे कमाया जाता है। रुपया पेड़ पर तो लगता नहीं कि आसानी से तोड़ कर घर ले जाए।

वह बड़ी देर तक इधर-उधर घूमता फिरा। आखिर घर लौट आया और मैया से बोला-"माँ ! बड़ी दौड़-धूप की है आज ! दर्द के मारे सर फटा जा रहा है !"

"तो बेटा! कुछ कमा लाए कि नहीं !" उसकी माँ ने पूछा। "नहीं; मगर खा-पीकर फिर निकल जाऊँगा।" उसने कहा।

खा-पीकर काम बिस्तरे पर पड़ गया तो शाम तक सोता ही रहा। जागने के बाद सोच में पड़ गया। पिता आते ही पूछेंगे कि "ला! तेरो कमाई कहाँ है !" तब वह क्या जवाब देगा! अन्त में उसे एक तदबीर सूझ गई। उसने माँ से कहा-"माँ! आज के चारह आने तू दे दे ! कल जरूर कमाउँगा।"

उसकी माँ ने उसे कुछ नहीं कहा। सन्दूक खोल कर पैसे निकाल लिए और झट उसे दे दिए।

कचरू दिन भर काम करने के बाद दुकान से लौट कर घर आया। कामू ने उसे देखते ही तमक कर पैसे निकाल कर उसके हाथ में रख दिए। कचरू ने थोड़ी देर तक देखा और पूछा-"बेटा ! कहाँ मिले ये पैसे तुझे ?" "मिलेंगे कहाँ से ? दिन भर काम करके कमा लाया हूँ।" कामू बोला।



"अच्छा! ऐसी बात !" यह कह कर कचरू ने वे पैसे चूल्हे में फेंक दिए।

दूसरे दिन माँ बेटे से बोली-"आज तो जाकर कुछ कमा लो बेटा।" उस दिन कमू ने माँ की नजर छिपा कर सन्दूक से एक रुपया निकाल लिया। चार आने की मिठाई खरीद कर खा ली और शाम को हाँफते हाँफते घर लौट आया। आते ही बारह आने पिता को दे दिए और बोला-"मेरे पसीने की कमाई है ! पिता ने उस दिन भी उन पैसों को उलट-पुलट कर देखा। आखिर उठा कर चूल्हे में फेंक दिए और बोला-"यह तेरे पसीने की कमाई नहीं है। मुझे धोखा देने की कोशिश कभी न करना!"

तीसरे दिन कामू सोच में पड़ गया। पिता को धोखा देना आसान नहीं था। इसलिए उसने सोचा कि आज जाकर सचमुच कमा लाऊँगा।" यह सोच कर तुरन्त वह घर से निकल गया। उस दिन उस गाँव में हाट लगता था। वह सीधे हाट में गया और गठरियाँ ढोने लगा। लेकिन शाम तक इस तरह मेहनत करने पर भी एक ही चवन्नी बना पाया। दूसरे दिन वह हाट पर जाकर माल असबाब ढोकर गाँव में लाने लगा। इस तरह कुछ पैसे जमा कर लिए। कामू हट्टा-कट्टा तो था, मगर कभी मेहनत करने का आदी न था। इसलिए पहले बड़ी मुश्किल जान पड़ी। फिर भी लगन के साथ काम करता रहा। दिन भर ढोने पर कहीं छः आने पैसे मिले। तीसरे दिन भी इसी तरह मेहनत करके उसने किसी तरह बारह आने जमा कर लिए। बारह आने पूरे होते ही लाकर पिता के हाथ में रख दिए।

कचरू ने उस दिन भी पैसे चूल्हे में फेंक दिए। लेकिन कामू ने दौड़ कर पैसे चूल्हे में से निकाल लिए। और दिनों की तरह देखता खड़ा नहीं रहा।

तब कचरू उसकी ओर देख कर मुसकुराते हुए बोला-"बेटा! सचमुच यह तुम्हारे पसीने की कमाई है। इसके पहले भी मैंने दो बार ऐसे चूल्हे में फेंक दिए। लेकिन तुमने चूँ तक नहीं की। जानते हो, क्यों ? इसलिए कि वह तुम्हारे पसीने की कमाई नहीं थी।

पसीने की कमाई से आदमी को ममता होती है। जो कमाता है उसी को मेहनत की कीमत मालूम होती है। दूसरों की कमाई खाने वाला इसे समझ नहीं सकता। इसलिए हरेक को कमा कर खाने की कोशिश करनी चाहिए। अब कामू की आँख खुल गई। उस दिन से वह खूब मेहनत करके पैसे कमाने लगा।





दीवाली के दिन

रामू एक अनाथ बालक था। उसके माँ-बाप कौन थे, वे कहाँ पैदा हुए और कहाँ मर गए, यह किसी को ज्ञात नहीं था। रामू ने जब होश सम्हाला तो अपने को धीरपुर में दूसरों के टुकड़ों पर पलते पाया।

रूखा-सूखा जो कुछ माँगने से मिल जाता वही रामू का पेट भरने के लिए काफी था। वह सो लिया करता था किसी के घर के बाहरी चबूतरे पर। अगर किसी माई को उसका नङ्ग-धडङ्ग बदन देख कर कृपा आ जाती और कुछ फटे-पुराने चीथड़े दे देती तो वही उसकी पोशाक बन जाते।

इतना सब कुछ होने पर भी रामू को अपनी जिन्दगी से कोई शिकायत न थी। वह हमेशा मस्त विचरा करता था। बड़ा मौजी जीव था। मुखड़े पर कभी उदासी की छाया भी न फटकने पाती थी। दूसरों को देख कर वह कभी न जलता था। जहाँ तक उससे वन पड़ता, सब की मदद किया करता। दूसरों के काम में हाथ बँटाने के लिए हमेशा तैयार रहता। इसलिए सब लोग उसे चाहते थे।

दीवाली का दिन था। उस दिन सबके घर खुशी छाई हुई थी। रात को जो चहल-पहल और रौनक होने वाली थी, उसके लिए अभी से तैयारियाँ हो रही थीं। घरों को सजा कर छिड़काव किया जा रहा था। बन्दनवार बाँधे जा रहे थे। बन्धु-मित्रों को न्योते भेजे जा रहे थे।

दिन चढ़ आया था। मगर रामू कुन्दन साव के घर के बाहरी चबूतरे पर पड़ा पड़ा अभी तक सो रहा था। पिछली रात उनके घर के काम-काज में मदद करते हुए वह बड़ी देर तक जगा रहा। "अबे रामू। ओ रामू! अरे, परब-दिन है और तू अभी तक पड़ा सो रहा है।" कुन्दन साव बाहर आए और रामू को सोता देख कर चिल्लाए।

उपाकुमारी



राम् आँख मलते हुए उठ बैठा। उसे याद आया कि आज ही दीवाली है। उठ कर कुँए के पास गया। ठण्डा पानी मुँह पर छिड़क लिया और हाथ-पाँव धो लिए। नींद की खुमारी छूट गई। यह सड़क पर आया और कदम बढ़ा कर चलते-चलते रुक गया। उसने सोचा-"कहाँ जाऊँ ? सब लोग अपने-अपने घर में मग्न थे। वे जानते थे कि रात आएगी और वे पटाखे छोड़ेंगे और आतिशबाजिया जलाएँगे। लेकिन रामू का तो कोई पर न था। अचानक उसने सोचा- "चलूँ राय साहब के घर। आज उनके यहाँ बड़ी चहल-पहल होगी।" वह कदम बढ़ा कर उसी ओर चल दिया।

राय साहब दुलीचन्द बड़े धनी-मानी आदमी थे। रामू कभी-कभी उनके घर जाकर उनके नातियों और पोतों को गोदी में उठा कर बहलाया करता था। इसके बदले उसे कुछ न कुछ खाने-पीने को देते और कभी-कभी दो-चार आने पैसे भी दे दिया करते।

रामू राय साहब के बङ्गले के नज़दीक पहुँच गया। इतने में उसकी नज़र जानू बुढ़िया की झोपड़ी पर पड़ गई। उसने देखा कि झोपड़ी की देहली गन्दी पड़ी है, जैसे तीन-चार दिन से किसी ने झाड़ू नहीं दिया है। इसके अलावा टट्टी भी भिड़काई हुई है। यह देख कर रामू अपने-आप रुक गया। बात कुछ अजीब सी थी। क्योंकि जानू बुढ़िया गरीबिन होने पर भी अपनी झोपड़ी को बहुत साफ-सुथरा रखती थी। उसके दरवाजे की टट्टी भी कभी नहीं लगी रहती थी। क्योंकि वह हमेशा देहली पर बैठी आने-जाने वालों को टोक कर बातें किया करती थी। रामू ने सोचा-"देखें, अन्दर चल कर कि क्या बात है ?" वह टट्टी ढकेल कर अन्दर गया।

तुरन्त अन्धेरी झोपड़ी में रोशनी घुस आई। रामू ने देखा कि एक चटाई पर बुढ़िया पड़ी हुई है। उसे जोर का बुखार चढ़ा हुआ है। सारा बदन तबे की तरह जल रहा है। वह बड़बड़ा रही है-"हो बिटुआ! हो राजा बिटुआ!"

देखते ही रामू ने समझ लिया कि बुढ़िया कमजोरी के मारे चल-फिर नहीं सकती। वह तीन चार दिन से यों ही पड़ी हुई है। रामू ने उसे "बुढ़िया दादी ! बुढ़िया दादी" कह कर पुकारा। लेकिन बुढ़िया ने उसे नहीं पहचाना। वह बड़-बड़ाई- "कौन हो बेटा, तुम ! जरा पानी तो पिला दो। बड़ी प्यास लगी है !" रामू चुरन्त घड़ा लेकर गया और ताजा पानी भर लाया। उसने एक गिलास से बुढ़िया को पानी पिला दिया।

यह बैठ कर सोचने लगा कि क्या करूँ। अन्त में तय किया "चलूँ, भोलेराम बैद्य के घर जाकर दवा ले आऊँ !"

वैद्य जी का घर ज्यादा दूर न था। रामू उनके यहाँ जाकर पैरों पड़ गया और गिड़गिड़ाने लगा-"चलिए। एक बार बुढ़िया को देख लीजिए ! वह मर रही है !" वैद्य झल्लाए और बोले- "मरती है तो मरने दे। त्यौहार के



दिन यह कहाँ की वला ले आया है।" लेकिन अन्त में रामू की बिनती सुन कर नरम पड़ गए और दवाइयों की पेटी लेकर उसके साथ चले।

झोपड़ी में पहुँच कर उन्होंने बुढ़िया की जाँच की और कहा-"रामू! घबराओ नहीं। मामूली बुखार है। साँझ तक उतर जाएगा। हो, कमज़ोरी ज्यादा है। इसे सागूदाना बना कर खिला देना। यह कह कर, दवाई देकर वे चले गए। रामू ने बुढ़िया की दवाई पिला दी और सोचने लगा कि सागूदाना कहाँ से लाऊँ ! उसके पास कानी कौड़ी भी न थी। बुढ़िया की झोपड़ी में भी दरिद्रता का राज



था। आखिर वह उठ कर कुन्दन साव के घर गया। साव जी पहले तो सागूदाने का नाम सुन कर बहुत बिगड़े। उधार और तिस पर दीवाली के दिन। कहने लगे-"भाग जा तुरन्त ! नहीं तो टाँग तोड़ दूँगा।" लेकिन रामू को भगा देना उतना आसान नहीं था। वह चुपके से सहुआइन जी के पास गया। वे उसे बहुत चाहती थी। उसने उनके घर के काम-काज में कई बार मदद की थी।

सहुआइन जी ने अपने हाथों उसे सागूदाना और शक्कर दे दिया। रामू ने लोट कर दोनों पोटलियाँ झोपड़ी में एक जगह रख दी। नजदीक जाकर देखा तो बुढ़िया का बुखार उतर चला था और वह झपक रही थी। रामू ने सोचा-"सागूदाना अभी नहीं दूँगा। शाम को दूँगा। तब तक बुखार उतर जाएगा। दोपहर हो चली थी। करने को और कुछ बाकी न था। हाँ, रामू को बहुत भूख लग रही थी। लेकिन यह बुढ़िया को छोड़ कर तो नहीं जा सकता था। इसलिए एक फटी-चिटी चटाई बिछा कर वहीं लेट गया। वह बुढ़िया के बारे में सोचने लगा। बेचारी जानू बुढ़िया का कोई नहीं था। एक लड़का था जो उसी की उमर में घर छोड़ कर चला गया। वह कहाँ गया, किसी को पता नहीं। बेचारी बुढ़िया उसके नाम को बहुत रोई धोई। लेकिन क्या फायदा? वह आज तक लौट कर नहीं आया। लोग कहते- "अरी बुढ़िया ! जरा सब्र कर। तेरा बेटा खूब रुपया कमा कर लौटेगा।" लेकिन बुढ़िया तो हार मान बैठी थी। फिर भी हमेशा उसे याद किया करती थी। अड़ोसियों पड़ोसियों की कृपा से वह अब तक किसी तरह दिन गुज़ार रही थी। लेकिन बीमारी में उसकी सेवा टहल कौन करता !

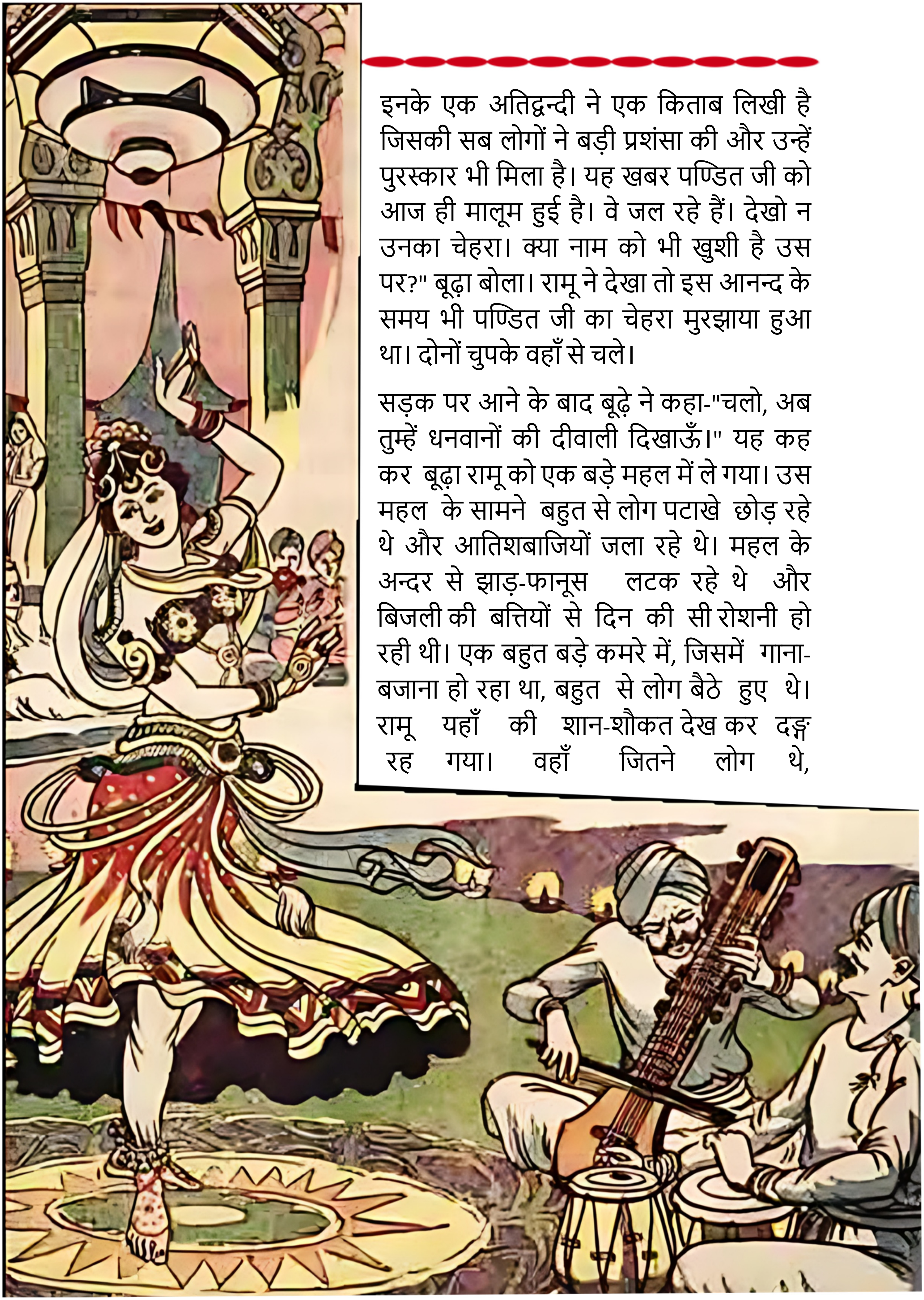
फिर आज त्योहार था। किसको पड़ी थी कि जानू बुढ़िया जिन्दा है या मर गई।

यों सोचते-सोचते रामू की आँख झपक गई। वह एक सपना देखने लगा। सपने में उसने देखा कि अन्धेरा हो गया है और वह एक सड़क पर चला जा रहा है। चलते-चलते उसे एक बूढ़ा दिखाई दिया। उसने पूछा-"बेटा! कहाँ जा रहे हो !" "जा रहा हूँ दीवाली देखने।" रामू ने उत्तर दिया। "दीवाली देखना चाहते हो! अच्छा, मेरे साथ चलो।" बूढ़े ने कहा। रामू बूढ़े के साथ हो लिया।

बूढ़ा रामू को अपने साथ एक घर में ले गया। अन्दर जाते वक्त उसने कहा-"यह एक बड़े पण्डित जी का घर है। अब जरा इनकी दीवाली देखना।" दोनों अन्दर गए और जाकर बैठकखाने के एक कोने में खड़े हो गए। पण्डित जी के बहुत से यार-दोस्त यहाँ बैठे हुए थे। गपशप चल रहा था। पण्डित जी के बाल-बच्चे रेशमी कपड़े पहने आनन्द से घूम रहे थे। बड़ी रौनक थी। बूढ़े ने कहा-"देखो! ये लोग कितने सुखी दिखाई देते हैं।"

"हाँ, सचमुच इन्हें किसी चीज़ की कमी नहीं।" रामू बोला। "लेकिन यह बात सच नहीं। पण्डित जी बहुत पढ़े-लिखे हैं। लेकिन बहुत ईर्ष्यालु और कोधी जीव हैं। अपनी बीवी, बाल-बच्चों और नौकर-चाकरों पर हमेशा बिगड़ते रहते हैं। जानते हो, डाह करने वाले और बात बात पर गुस्सा होने वाले कभी सुखी नहीं हो सकते।





इनके एक अतिद्वन्दी ने एक किताब लिखी है जिसकी सब लोगों ने बड़ी प्रशंसा की और उन्हें पुरस्कार भी मिला है। यह खबर पण्डित जी को आज ही मालूम हुई है। वे जल रहे हैं। देखो न उनका चेहरा। क्या नाम को भी खुशी है उस पर?" बूढ़ा बोला। रामू ने देखा तो इस आनन्द के समय भी पण्डित जी का चेहरा मुरझाया हुआ था। दोनों चुपके वहाँ से चले।

सड़क पर आने के बाद बूढ़े ने कहा-"चलो, अब तुम्हें धनवानों की दीवाली दिखाऊँ।" यह कह कर बूढ़ा रामू को एक बड़े महल में ले गया। उस महल के सामने बहुत से लोग पटाखे छोड़ रहे थे और आतिशबाजियों जला रहे थे। महल के अन्दर से झाड़-फानूस लटक रहे थे और बिजली की बत्तियों से दिन की सी रोशनी हो रही थी। एक बहुत बड़े कमरे में, जिसमें गाना-बजाना हो रहा था, बहुत से लोग बैठे हुए थे। रामू यहाँ की शान-शौकत देख कर दङ्ग रह गया। वहाँ जितने लोग थे,

सब कीमती कपड़े पहने हुए थे। उनको देख कर रामू ने सोचा-"ये लोग सुखी हैं।" बूढ़े ने मानों उसके मन की बात ताड़ ली और कहा- "बेटा! तुम्हारा सोचना गलत है। देखो ! सबके चीच जो गद्दे पर बैठा हुआ है, वहीं मकान मालिक है। उसका चेहरा देखो! वह चिन्ता से घुला जा रहा है। उसका इकलौता लड़का सब तरह की बुरी आदतों का शिकार है। वह जुमारी, शराबी और लम्पट है। बाप का बेईमानी मे कमाया हुआ रूपया पानी की तरह बहता है। इधर मालिकिन हमेशा पतोहू के माथ झगड़ती रहती है। इस पर में सब कुछ है मगर सुख-शान्ति नहीं है। चलो, अब यहाँ मे चलें।" दोनों उठ कर बाहर आए। बूढ़े ने कहा-"बेटा रामू ! अब चलो मैं तुम्हे सच्ची दीवाली दिखाऊँ!" रामू उस के साथ चलते हुए मन-ही-मन सोचने और अचरज करने लगा कि बूढ़ा न जाने, अब उसे कहाँ ले जाएगा। थोड़ी देर बाद ये दोनों एक झोपड़ी के पास पहुँचे। रामू ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि दो देवियाँ जो दिव्य वस्त्राभूषण पहने हुई थी, उस झोपड़ी में घुस रही है। उसने बूढ़े से पूछा-"वे दोनों देवियाँ कौन हैं



और वे क्यों उस झोंपड़ी में घुस रही हैं ?" बूढ़ा बोला -"बेटा! ये ही देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी हैं, जो पण्डित और धनवान का घर छोड़ कर उस झोपड़ी में प्रवेश कर रही है। तुम भी जाओ न अन्दर ! देखो, क्या होता है!" इतना कह कर बूढ़ा अदृश्य हो गया।

रामू ने डरते-डरते जाकर झोपड़ी के दरवाजे की टट्टी खोली और अन्दर कदम रखा। वहाँ एक ही मिट्टी का दीप जल रहा था, जिसकी रोशनी अन्धेरे को भगाने में पूरी तरह कामयाब नहीं हो रही थी। उस धुँधली रोशनी में रामू ने देखा कि एक

बुढ़िया चटाई पर बैठी हुई है, जिसका चेहरा ठीक जानू बुढ़िया जैसा है। उस बुढ़िया ने रामू को देखते ही हाथ पसार कर कहा-"बेटा ! तुम आ गए!" और उठ कर उसे गले से लगा लिया। तुरन्त बुढ़िया की वह झोंपड़ी एक भव्य भवन में बदल गई। अब वहाँ हजारों दीप जलने लगे। वे मामूली दीप नहीं थे, बल्कि दिव्य मणि-दीप थे। रामू चिल्लाया-"यह क्या!" तुरन्त रामू का सपना टूट गया। उसकी आँखें खुल गई। उसने देखा कि जानू बुढ़िया उठ कर बैठ गई है और एक नौजवान को गले लगा कर बारम्बार माथा सूँघ रही है। रामू ने कहा-" 'जानू दादी ! तुम्हें बुखार है। यह क्या कर रही हो ! यह नौजवान कौन है !"

जानू बुढ़िया ने कहा-"बेटा रामू ! यह मेरा लड़का है, जो तुम्हारी ही उमर में घर से भाग गया था। आज दीवाली के दिन यह फिर मुझे मिल गया।" उस नौजवान ने कहा-"माँ ! अब मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा। मैं खूब रुपया कमा लाया हूँ ! अब तुम्हें किसी चीज की फिक्र न करने दूँगा। अच्छा, माँ ! यह लड़का कौन है ?"

"बेटा! यह रामू है। तुम्हारा भाई है।" जानू बुढ़िया बोली।

"आओ ! भाई मेरे। गले मिल लो !" यह कह कर उस नौजवान ने को गले लगा लिया।

अन्धेरा हो रहा था। रामू ने उठ कर दिया जलाया। थोड़ी दूर पर राय साहब दुलीचन्द के महल के सामने दिन का सा उजाला हो रहा था। बार बार प्रकाश का एक ज्वार सा उठता था, जिसकी तरङ्गे आसमान छू रही थीं। चहल-पहल का तो ठिकाना ही न था।

रामू और उसके नए भैया उस ओर देखने लगे। राय साहब दुलीचन्द का महल आनन्द से फूला न समा रहा था। मगर उनकी झोंपड़ी ही आज सच्ची दीवाली मना रही थी।





कहते हैं कि किसी समय यज्ञदत्त नाम का एक गरीब ब्राह्मण रहता था। एक बार उसे किसी काम पर दूसरे गाँव जाना पड़ा। रास्ते में एक जङ्गल पड़ता था। बीच जङ्गल में पहुँचते ही यज्ञदत को जोर की प्यास लगी। जब दूर पर एक कुँआ दिखाई दिया तो लपक कर वह उसके पास पहुँचा। झाँक कर देखा तो कुँआ एकदम सूखा था। लेकिन देखता क्या है कि उसमें एक बाघ, एक बन्दर, एक साँप और एक आदमी गिरे हुए हैं। बाघ ने यज्ञदत्त को देख कर कहा-"ब्राह्मण कृपा करके मुझे बाहर निकाल दो ! तुम्हारा भला होगा।"

"तुम्हारा तो नाम सुनते ही सब लोग थर-थर करने लगते हैं ! मैं तुम पर कैसे विश्वास करूँ !" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

इस पर बाघ ने फिर कहा-"सब पापों से बढ़ कर कृतघ्नता है जिसका कोई प्रायश्चित ही नहीं है। मैं कृतघ्नता दिखाऊँगा तो इहलोक-परलोक दोनों से जाउँगा न। शङ्का मत करो। मैं कभी वैसा न करूँगा। कृपा करके तुम मुझे उबार लो !"

यज्ञदत्त को तरस आ गया और उसने उस बाघ को बाहर निकाल दिया।

उसके बाद बन्दर ने भी वैसी ही मार्थना की। उसने उसे भी निकाला। यह देख कर साँप ने भी विनती की। तब यज्ञदत्त बोला-"तुम्हें तो देखते ही मेरे हाथ काँपने लगे हैं! बोलो तो, कैसे तुम्हें बाहर निकालूँ।"

इस पर साँप बोला-"हे यज्ञदत्त। हमारा डसना या न डसना हमारी अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं। भगवान के इशारे के बगैर हम किसी की कोई बुराई नहीं कर सकते। इसलिए डरो नहीं। मेरी भी

बिधुभूषण



रक्षा करो और पुण्य कमाओ।" यह सुन कर यज्ञदत्त ने उस साँप को भी बाहर निकाल दिया।

तब बाघ ने यज्ञदत्त से कहा-"देखो! वह ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला वह जो पहाड़ दिखाई दे रहा है, उसकी उत्तरी गुफा में मेरी माँद है। अगर तुम यहाँ तक आ जाओगे तो मैं तुम्हारी कुछ भलाई जरूर कर दूँगा।"

"उसी गुफा के सामने एक बरगद के पेड़ पर मैं रहता हूँ। उधर आने पर मेरे घर जरूर आना।" बन्दर ने भी ब्राह्मण को बुलावा दिया।

"तुम पर कभी कोई सङ्कट आ पड़े तो मुझे याद कर लेना! मैं तुम्हें बचाऊँगा।" साँप ने कहा। फिर साँप, चन्दर और बाघ तीनों अपनी-अपनी जगह चले गए।

उसके बाद ब्राह्मण ने दयावश कुँए में गिरे हुए मनुष्य को बाहर निकाला। पह आदमी बोला-"ब्राह्मण महाराज। मैं चारिकच्छ नामक नगर का रहने वाला एक सुनार हूँ। कभी गहने बनाने का काम आए तो मेरे पास आ जाना !" यह कह कर वह भी अपने घर चला गया।

तब ब्रह्मण ने सोचा-"देखें, ये जीव-जन्तु जिनकी मैंने भलाई की, किस प्रकार मेरा स्वागत करते हैं।" यह सोच कर पहले यह बन्दर के पास गया। चन्दर ने मीठे-मीठे फल खिला कर उसे तृप्त कर दिया।

ब्राह्मण वहाँ से सीधे बाघ की गुफा में घुसा। बाघ ने उसे कुछ अमूल्य आवरण दिए और कहा-"दे बिप्रवर! एक राज- कुमार जङ्गल में शिकार खेलने आया और घोड़े से गिर कर मर गया। उसके गहने मैंने उठा लिए और तुम्हारे लिए रख छोड़े हैं। यह लो।"

"ठीक तो है! मैं इन गहनों को अपने मित्र सुनार को देकर बिकवाऊँगा।" ब्राह्मण ने सोचा और वहाँ से सीधे बारिकच्छ नगर में सुनार के घर गया। सुनार ने ब्रह्मण

की बहुत खातिर की और पूछा- "तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ !"

सब ब्राम्हण ने उसे बाघ के दिए हुए गहने दिखाए और अपना इरादा प्रगट किया।

उन गहनों को देखते ही सुनार ने सोचा-"ये जरूर हमारे राजकुमार के गहने हैं, जिन्हें इसी बीच किसी ने जङ्गल में मार डाला। राजा ने घोषणा भी की है कि जो हत्यारे को पकड़वा देगा, उसे अच्छा ईनाम मिलेगा। इसी ब्राम्हण ने उसको मार डाला होगा। इसे पकड़वा कर में ही वह ईनाम क्यों न पाऊँ !"

बस, उसकी नीयत बिगड़ गई और उसने ब्रह्मण से कहा-"अच्छा, तुम जरा यहाँ ठहरो! मैं बाजार जाकर इन्हें बेच लाता हूँ।" यह कह कर वह गहने लेकर सीधे राजा के पास गया और बोला-"महाराज ! लीजिए अपने गहने। मैंने राजकुमार के खूनी को पकड़ लिया है।" राजा ने तुरन्त सिपाहियों को भेज कर ब्राम्हण को पकड़ मँगाया और उसे प्राण-दण्ड सुना दिया। रात को काल-कोठरी में ब्राम्हण ने साँप को याद किया। तुरन्त साँप ने वहाँ आकर कहा- "मुझे सब कुछ मालूम हो गया। मैं जाता हूँ रानी को डसने। उसे कोई नहीं जिला सकेगा। लेकिन तुम्हारा



हाथ छूते ही वह जी उठेगी। बस, राजा तुम्हें माफ कर देगा।" यह कह कर साँप चला गया और जाकर रानी को डस लिया।

थोड़ी देर में राजा के अन्तःपुर में कुहराम मच गया। बड़े-बड़े बैद्य-हकीम, सँपेरे तान्त्रिक बगैरह आए। लेकिन कोई रानी को न जिला सका। तब राजा ने घोषणा की कि जो रानी को जिलाएगा, उसे मुँह माँगा ईनाम मिलेगा। तब यज्ञदत्त ने जाकर उसे जिलाया और ईनाम पाया। इतना ही नहीं; जब उसने गहनों के बारे में सच्ची-सच्ची बात सुना दी तो राजा ने सुनार को प्राण-दण्ड दे दिया।



किसी समय एक नगर में तीन दोस्त रहते थे। उनमें एक धनी था, दूसरा विद्वान था और तीसरा चतुर था। उन तीनों में एक बार तकरार हुआ कि किसकी बड़ाई ज्यादा है। हर एक कहने लगा मैं बड़ा हूँ , तो मैं बड़ा हूँ। अन्त में तीनों में से एक ने कहा- "भाइयो ! नाहक झगड़ने से कोई फायदा न होगा। सुनो, इस नगर की राजकुमारी ने शपथ ली है कि वह मरद का मुँह तक नहीं देखेगी। इसीलिए यह अपना एक खास महल बनवा कर उसमें रहती है। उस महल की तरफ कोई मरद आँख उठा कर भी नहीं देख सकता। जो दुम्माहस करता है, उसकी जान खतरे में पड़ जाती है। अब सुनो, हम तीनों में से जो उससे व्याह कर पाए, वही बड़ा है।" यह शर्त बाकी दोनों ने भी मान ली। तुरन्त धनी मित्र ने सदाब्रत बाँटना और दान पुण्य करना शुरू किया जिससे उसकी बढ़ाई राजकुमारी तक पहुँचे।

उसने बहुमूल्य हीरे-जवाहर खरीदे और नवरन खचित आभरण बनवा कर उन्हें सब को दिलाने लगा।

उसका विश्वास था कि उसकी प्रशंसा कभी न कभी राजकुमारी के कानों में पड़ेगी ही। तब उसके मन में अवश्य कुतूहल पैदा होगा। एक बार दासियों ने उसके धन-वैभव और उसकी दानशीलता का जिक्र चलाया भी। तब राजकुमारी ने पूछा- "यह व्यक्ति औरत है कि मरद !" दासियों ने बताया कि मरद है। "तो फिर कभी मरदों का जिक्र यहाँ न चलाना।" राजकुमारी ने घृणा के साथ कहा।

जब धनी मित्र को किसी तरह यह बात मालूम हो गई तो बेचारे को हार माननी ही पड़ी।

सुमनलता देवी

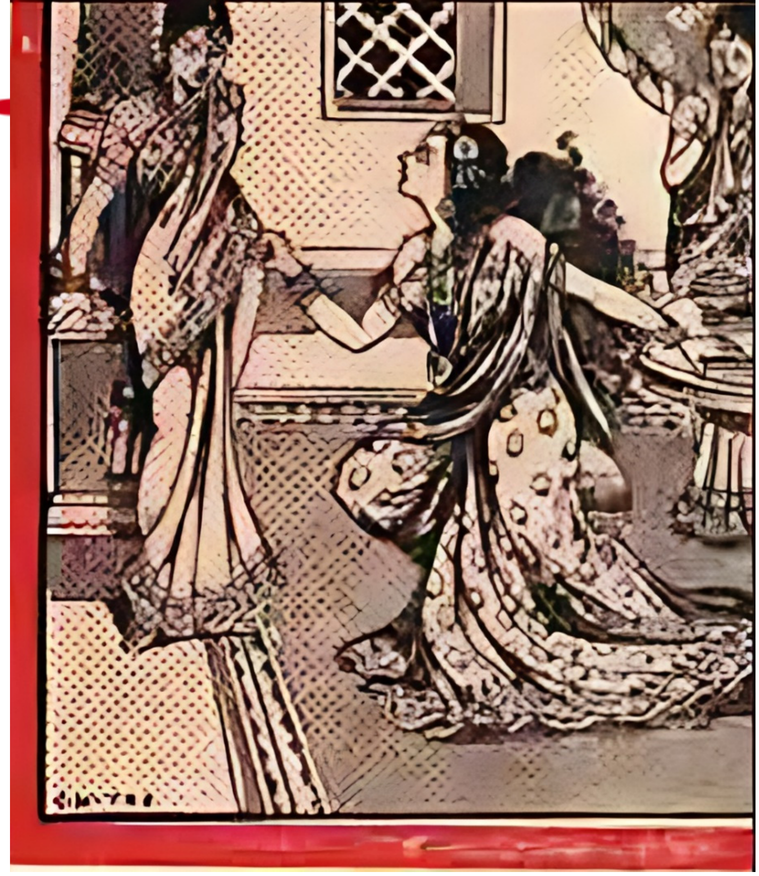
उसके बाद विज्ञान की बारी आई। वह राजपथ पर जाकर दूसरों के शरीर में प्रवेश करना, अदृश्य हो जाना इत्यादि चमत्कार दिखाने लगा।

तुरन्त सब जगह उसकी चर्चा होने लगी। जब दासियों ने राजकुमारी से उसका जिक्र किया तो उसने पूछा-"वह कौन है, औरत है कि मर्द ?"

दासियों ने बताया कि मर्द है। तब राज-कुमारी ने आग बबूला होकर कहा-"पहले ही तुम लोगों से कह दिया था कि मर्दों की चर्चा यहाँ न करना। फिर कभी ऐसा करोगी तो याद रखो, में तुम लोगों के सिर कटवा कर किले के कंगूरों पर टँगवा दूँगी।"

जब यह बात किसी तरह विद्वान को मालूम हुई तो यह भी निराश हो गया। अन्त में चतुर-पुरुष की बारी आई। उसने धीरे-धीरे उस बुढ़िया से, जो राज-कुमारी के लिए फूलों की मालाएँ गूँथ कर ले जाया करती थी, हेल-मेल कर लिया और उसके घर जाकर रहने लगा।

एक दिन चतुर पुरुष ने कहीं से रङ्ग-बिरङ्गे फूल लाकर एक सुन्दर माला गूँथी। वह उसे बुढ़िया के हाथ में देकर बोला-"नानी ! नानी ! आज



मैंने यह माला गूँथी है। तुम इसे ले जाकर राजकुमारी को दे देना। वह खुश होकर पूछेगी कि "यह माला किसने गूँथी है?"

तब तुन कहना-'कल मेरी भाँजी दूसरे गाँव से आई। उसी ने यह माला गूँथी है।' तब राजकुमारी अगर कुछ कहे तो वह मुझसे आकर कह देना।"

बुढ़िया ने बैसा ही किया। राजकुमारी बहुत खुश हुई और बोली-"नानी ! में तुम्हारी भाँजी को देखना चाहती हूँ। कल उसे अपने साथ लेते आना।"

बूढ़ी ने घर आकर सारा हाल चतुर पुरुष को सुना दिया। दूसरे दिन उसने



एक युवती का भेष बना लिया और बुढ़िया के साथ राज-महल में गया।

बेचारी राजकुमारी क्या जाने कि वह औरत के रूप में एक मरद है ? उसको बिलकुल शक न हुआ। राजकुमारी को उस नकली युवती से प्रेम हो गया। उसने उसे अपनी सखी बना लिया और अपने मन की सारी बातें सुनाने लगी।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद उस युवती ने पूछा- "राजकुमारी! मैं एक सवाल पूछना चाहती हूँ। क्या सच-सच बताओगी?" "जरूर बताऊँगी।" राजकुमारी ने उससे कहा।

"अच्छा! मैंने सुना है कि तुमने मरद का मुँह तक न देखने की शपथ ली है। बताओ तुम्हें मरद से क्यों इतनी चिढ़ है !"

तब राजकुमारी बोली-"प्यारी सखी ! यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा रहस्य है। जाने क्यों, मेरा मन तुम्हारे प्रति बहुत आकर्षित हो रहा है। इसलिए उन्हें सुना देती हूँ। याद रखो, यह भेद किसी से नहीं कहना होगा। सुनो, पिछले जन्म में मैं और मेरे पति दोनों हरिण रूप में विचरते रहते थे। एक बार हम दोनों एक व्याध के जाल में फँस गए। में उस समय गर्भिणी थी। इसलिए उस जाल से बच कर भाग न सकी। मेरा पति बच कर भाग गया। उस ने मेरी सुध भी न ली। मैं लाचार थी। क्या करती ? व्याध ने मुझे पकड़ कर मार डाला। तब से इन स्वार्थी मर्दों को देखते ही मेरा खून खौलने लगता है। मैंने उसी समय शपथ ले ली कि फिर कभी मर्दों का मुँह न देखूँगी। मुझे अपने पूर्व जन्म की सारी बातें याद हैं। इसी से तुम्हें यह रहस्य बता सकी।"

भेद जानने के बाद उस नकली युवती ने सोचा कि "अब ज्यादा देर तक यहाँ रहने से मेरा भाण्डा फूट जाएगा।" इसलिए

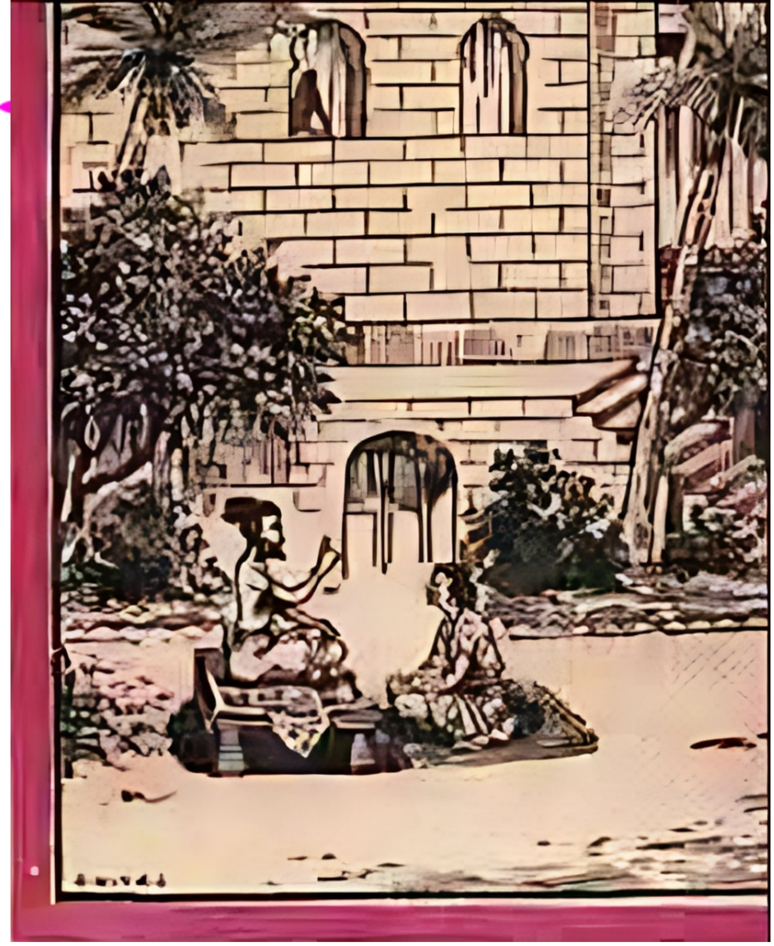
वह राजकुमारी से छुट्टी लेकर तुरन्त घर चली गई।

घर जाकर उस चतुर पुरुष ने एक योगी का भेष बनाया और उस राजमहल के बगल में एक बाग में जाकर धूनी रमाई। उस योगी ने बाग के माली से कह दिया था-"बेटा! मरद लोग जितने भी आएँ, कोई परवाह नहीं। हाँ, औरतों को अन्दर न आने देना। खबरदार ! अगर औरतें आई, तो मैं तुरन्त तुम्हें शाप दे दूँगा।" माली उसके आज्ञानुसार पहरा देने लगा और औरतों को अन्दर आने से रोकने लगा।

हर रोज शहर के बहुत से मरद उस योगी के दर्शन करने आने लगे और आशीर्वाद पाकर लौटने लगे। धीरे-धीरे उस बात की भनक राजा तक पहुँच गई। एक दिन राजा स्वयं उसके दर्शन करने आया और बोला-"महात्मा ! आप एक बार हमारे घर पधारें और हमें कृतार्थ करें।"

तब जोगी ने उनको अपनी शपथ की बात सुनाई और कहा-"जरूर आऊँगा। मगर याद रखना! में औरत का मुँह नहीं देखता।"

यह सुन कर राजा बोला-"भगवन् ! में ऐसा इन्तजाम करूँगा जिससे



आपको कोई दिक्कत न हो।" यह कह कर उसने हुक्म दे दिया कि किले में किसी औरत को न आने दो। तब बड़ी धूम-धाम के साथ योगी को अपने महल में ले गया।

इस योगी की शपथ की बात राजकुमारी ने भी सुनी। उसने सोचा-"कैसी अजीब बात है ! इस योगी ने ठीक मुझसे उल्टी ही शपथ ली है।" उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने निश्चय कर लिया कि इस अजीब आदमी को देखना चाहिए। इसलिए उसने अपने महल की खिड़की पर एक पर्दा टँगवाया। वह उसकी आड़ से झाँक कर देखने और उस विचित्र योगी की बातें ध्यान से सुनने लगी।

राजा ने उस योगी का खूब सेवा-सत्कार किया और उनका उपदेश सुन कर बोला -"भगवन्! आपने मेरे सारे सन्देह दूर कर दिए। लेकिन एक सवाल मैंने अभी तक नहीं किया। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप औरत का मुँह क्यों नहीं देखते!"

तब उस कपटी साधू ने जवाब दिया- "राजन् ! मैं तुम्हारा कुतूहल दूर करता हूँ। सुनो! पिछले जन्म में, मैं और मेरी पत्नी, दोनों हरिण-रूप में किरते थे। एक बार हम दोनों एक व्याध के जाल में फँस गए। तब मेरी पत्नी ने मुझे जाल में ही छोड़ दिया और खुद जान बचा कर निकल गई। तब से मैंने शपथ ले ली कि फिर कभी औरत का मुँह नहीं देखूँगा। पिछले जन्म की बात अभी तक मुझे याद है। इसी से आपको यह भेद बता सका।"

राजकुमारी जो छिप कर ये बातें सुन रही थी, जल्दी-जल्दी नीचे उतर आई और योगी के सामने जा खड़ी हुई। यह बोली- 'जी ! आप झूठ बोल रहे हैं। सच बताइए, जाल में से हरिण भाग गया था या हरिणी? पिछले जन्म में मैं ही हरिणी बन कर पैदा हुई थी। व्याध के जाल में फँस कर मैंने ही जान गँवाई थी। आप सोचते हैं कि झूठ बोल कर सारा दोष मुझ पर लाद देंगे और यह कोई नहीं जानेगा। मेरे पति के सिवा यह कहानी किसी को मालूम नहीं। इससे मालूम होता है कि आप ही मेरे पति हैं।" यह कह कर उसने उस योगी का हाथ पकड़ लिया।

फिर बड़ी धूम-धाम के साथ दोनों का व्याह हो गया। वे सुख से दिन काटने लगे। धनी और विद्वान, दोनों मित्रों को मानना पड़ा कि चतुर-मित्र ही उनसे बड़ा है।





थोड़ी देर में धुआँ हट गया। उदय ने जब फिर कदम आगे बढ़ाया तो तरह-तरह की आवाजों से सारी गुफा गूञ्जने लगी। लेकिन वह जरा भी नहीं डरा। सीधे माता के सामने जाकर खड़ा हो गया और बोला- "मैया ! क्या तुम सचमुच इतने बेकसूरो की जान लेना चाहती हो ? यह कैसा इन्साफ है ! उस दुष्ट राक्षस को वर देकर क्या तुम सारे संसार को सङ्कट में डालना चाहती हो !"

लेकिन काली मैया कुछ नहीं बोली।

तब उदय फिर कहने लगा-"मैया ! हमने अनेक कष्ट उठाए हैं। लेकिन हमने अब तक किसी की बुराई नहीं की। पर सुनो मैया ! अब इस दुष्ट राक्षस की जान लिए बिना हम नहीं रहेंगे ! मैया, अब तो हम पर कृपा करो और बता दो कि उस पापी राक्षस के प्राण कहाँ बसते हैं !"

लेकिन देवी ने कोई जवाब न दिया।

बस, उदय ने म्यान से तलवार खीच ली और एक ही बार में देवी के हाथ पर बैठे हुए गिद्ध के दो टुकड़े कर डाला। दोनों टुकड़े होमकुण्ड में जा गिरे। यह क्या ? देवी की मूर्ति देखते-देखते अन्तर्धान हो गई और सारी गुफा एक अद्वितीय प्रकाश से चमक उठी।

उदय ने पीछे मुड़कर देखा। वह जिन-जिन कमरों में होकर आया था वे



सभी गायब थे। उस जगह एक मैदान था। उदय अब वापस चलने लगा। पहले जिस जगह हीरे-जवाहरात जड़ा दरवाजा था वहाँ आने पर हीरे जड़ा हुआ एक अण्डा दिखाई दिया, जो बतख के अण्डे के बराबर था। उसे उठा कर वह चला। थोड़ी दूर जाने पर उसे एक चाँदी का अण्डा दिखाई दिया और थोड़ी दूर जाने पर उसे एक सोने का अण्डा दिखाई दिया। उन्हें भी उठा कर वह चल पड़ा। आगे बढ़ने पर उसने देखा कि जिस कमरे में पहले दाड़ी बाला टँगा हुआ था, वह और उसके आस-पास के सभी कमरे गायब हैं।

उदय हैरान होकर गुफा से बाहर निकला। तुरन्त राक्षस के नौकरों ने आकर उसे घेर लिया। उनके साथ जितने लोग सरोवर में इस बने तैर रहे थे, वे सब के सब मनुष्य रूप धारण कर उसके पास आ गए। भाई को देखते ही प्रदोष दौड़ा और आकर उसके गले लग गया।

इतने में राक्षस के नौकरों ने उदय को हाथों-हाथ उठा कर कन्धे पर चढ़ा लिया और उछालते हुए बोले- "भैया ! सचमुच तुम कोई देवता हो ! तुम्हारी कृपा से आज इतने दिन बाद हमें इस गुलामी से मुक्ति मिल गई। हम तुम्हारा यह ऋण कैसे चुका सकते हैं ?

उन सब ने एक स्वर में कहा।

इतने में उन को उदय की भोंडी बाँह दिखाई दी, जिस से खून बह रहा था। सब चिल्लाने लगे-"यह क्या ? झट जाकर जड़ी-बूटियाँ ले जाओ ! दवा लगा दें !"

तुरन्त लोग दौड़ कर गए और बड़ी-बूटियाँ ले आए। उनका रस निमोड़ कर उदय की बाँह पर लगा दिया गया और पट्टी बाँध दी गई। फिर सब लोग सरोवर की तरफ चले। लेकिन अब वह सरोवर कहाँ ?

कहाँ उसके किनारे के ये पेड़ ! वहाँ तो सिर्फ उन अभागों की पत्थर की मूर्तियाँ थीं, जो उदय ही की तरह राक्षस को मारने आए थे और विफल हो गए थे।



यह सब देख कर उदय को बहुत अचरज हुआ। उसने पूछा-"यह क्या ? सरोवर कहाँ है !"

तब राक्षस के नौकरों में से एक ने जवाब दिया-"सरोवर कहाँ से आएगा बाबूजी ! वह तो देवी के साथ ही गायब हो गया होगा।"

"फिर इन पत्थर की मूरतों का क्या हाल होगा !" उदय ने बड़ी चिन्ता के साथ पूछा।

"इनके लिए और कोई चारा नहीं। सरोवर तो गायब हो ही गया। अब इनको मनुष्य रूप कैसे मिलेगा ?" राक्षस के नौकरों ने कहा।

"हे भगवन् ! यह तो बहुत बुरा हुआ। मेरे कारण इतने लोगों की जान आफत में पड़ गई।" यह कह कर उदय शौक में दूब गया।

कुछ देर मौन रहने के बाद उसने कहा-"मालूम नहीं, भाई निशीथ और दाढ़ी वाला कहाँ है! कौन जाने, राजकुमारियों का क्या हाल हुआ ! जल्दी से जल्दी इन सबको ढूँढ लाना होगा।"

"तो हम लोग ढूँढने जाते हैं।" राक्षस के नौकरों ने कहा।

"नहीं, तुम लोग नहीं पहरा देते रहो!" यह कह कर उदय ने नौकरों को वहीं छोड़ा और बाकी लोगों को साथ लेकर खुद यहाँ से चला। सबसे पहले उसने प्रतापसिंह के पास जाकर पूछ-ताछ की।

"नहीं भैया! उनमें से तो कोई इस तरफ नहीं आया ! तुम भी तो बहुत दिनों बाद आज इधर आए हो ! बताओ, राक्षस



ने तुम्हें कैसे आने दिया ?" प्रतापसिंह ने पूछा।

"पता नहीं, राक्षस कहाँ है, क्या कर रहा है। हाँ, उसका माया-महल मैंने मिट्टी में मिला दिया। अच्छा, सब कुछ बता दूँगा पीछे। अभी निशीथ और राजकुमारियों की

खोज करने जाना है।" उदय ने जवाब दिया।

"चाहो तो कुछ सिपाहियों को साथ ले जाओ !" राजा ने बड़ी मेहरबानी दिखाते हुए कहा।

"जरूरत नहीं, धन्यवाद।" कह कर उदय ने राजा से छुट्टी ली और चल पड़ा।

* * * * *

अब हम जरा जान लें कि निशीथ का, जो प्रतापसिंह के सिपाहियों को साथ लेकर चला था, क्या हाल हुआ।

मौका पाकर प्रतापसिंह के सिपाहियों ने निशीथ का सिर काट लिया और उसे धड़ के साथ एक झाड़ी में फेंक कर चले गए। दूसरे दिन एक मुनिवर जो नज़दीक के किसी आश्रम में रहते थे, उधर से आए । उनकी नजर उस लाश पर पड़ गई। तुरन्त वे उस सिर और धड़ को अपने आश्रम में ले गए और इन्तजार में रहे कि कोई न कोई इसकी खोज में आएगा।

कुछ दिन बाद दानशील महाराज के मन्त्री किसी काम पर इस आश्रम में आए। उन्होंने निशीथ के सिर को देख कर तुरन्त पहचान लिया। "हाय यह क्या हुआ !" कह कर वे आसू बहाने लगे।

मुनिवर ने उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहा-"मन्त्री जी ! आँसू बहाने से कोई फायदा नहीं। चलो, इस लाश को लेकर श्रावस्ती चलें। मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा। इसे जिलाना तो मेरे वश की बात नहीं; लेकिन हाँ में तुम्हारी एक भलाई कर सकता हूँ। मैं इस लाश पर एक ऐसा

लेप लगा दूँगा जिससे यह हमेशा इसी तरह बनी रहेगी; कभी सड़ेगी नहीं।"

"इससे बढ़ कर भला और क्या चाहिए! चलिए, हम लोग पहले श्रावस्ती चलें। सारा हाल महाराज को सुना देंगे। वे ही निश्चय करेंगे कि अब क्या किया जाए !" मन्त्री ने कहा। आखिर वे दोनों उस लाश को लेकर श्रावस्ती गए।

निशीथ की लाश को देख कर सब लोग शोकमें डूब गए। उदय, प्रदोष और उन की बूढ़ी माता तो ऐसे बिलखने लगे कि देखने वालों के कलेजे टूक-टूक हो जाते थे। राजा के महल में मातम छा गया। मुनिपर सब को धीरज बँधाने की कोशिश कर रहे थे। ऐसे समय दाढ़ी वाला वहाँ आ पहुँचा।

अब तुम पूछोगे कि दाढ़ी वाला ठीक समय पर वहाँ कैसे आ पहुँचा। सुनो, राक्षस जानता था कि दाढ़ी वाला बहुत मायावी है। माया-महल में छोड़ने से वह किसी न किसी तरह बन्धन छुड़ा लेगा और तब उसी की जान मुश्किल में पड़ जाएगी। इसलिए जब वह वहाँ से चला तो दाढ़ी वाले को भी साथ लेता गया।



राक्षस गिद्ध के रूप में दाढ़ी वाले को चंगुल में दबोचे उड़ा जा रहा था। नीचे महासागर लहरें मार रहा था। चारों ओर पानी ही पानी था। ऐसे समय गुफा में उदय ने माई के हाथ पर बैठे गिद्ध को मार डाला। गिद्ध के मरते ही राक्षस का रूप बदल गया और वह असली रूप में "हाय हाय !" करते हुए समुन्दर में गिर पड़ा और ठण्डा हो गया। यह सब पल भर में हुआ।

उसके साथ दाढ़ी वाला भी समुन्दर में गिरा और तीन-चार दिन तक बड़ी मुश्किल से तैरता तैरता किनारे पहुँचा।



राक्षस के मरते ही उसने समझ लिया था कि माया-महल गायब हो गया होगा ! किनारे पर बैठ कर यह सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इतने में उसे कुछ दूर पर एक शहर दिखाई दिया। वह उठ खड़ा हुआ। पास पहुँच कर पूछताछ करने से मालूम हुआ कि वह श्रावस्ती नगर है। बस, अब उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। वह तुरन्त नगर में घुसा।

राज-महल में जाकर उसने देखा कि चारों तरफ कुहराम मचा हुआ है।

दाढ़ी बाला बुद्धू तो था नहीं। यह मायाबी राक्षस का चेला था। सारा हाल सुन कर उसने लोगों को ढाढस बँधाते हुए कहा-"घबराने की कोई बात नहीं। सब कुछ ठीक हो जाएगा। फिर उसने उदय को बुला कर कहा-"भई ! यह सब उस प्रतापसिंह की करतूत है और कुछ नहीं। उसी ने अञ्जन, भस्म वगैरह चुरा लिए होंगे। चलो, सीधे हम उसके यहाँ चलें। फिर देखा जाएगा!"

तुरन्त उदय ने महाराज की सेना एकत्र की और दाढ़ी वाले के साथ मालव-देश की ओर चला। वहाँ जाकर क्या देखता है कि सारा नगर सजाया गया है और जहाँ देखो, वहीं धूम मची हुई है। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि राजा प्रतापसिंह की, तीन राजकुमारियों से एक साथ शादी होने वाली है। जगह जगह लोग इसी बात की चर्चा कर रहे हैं।

तब उदय को मालूम हुआ कि दाढ़ी वाले का कहना सच है। वे सब चकित होकर वहाँ से महल की ओर चले। अन्दर जाफर उन्होंने देखा कि लगन-मण्डप में सुहासिनी, सुभाषिणी और सुकेशिनी तीनों एक कतार में वधुएँ बनी बैठी हुई हैं और वरासन पर प्रतापसिंह बैठा हुआ है।

कोष से उदय ने तलवार खींच ली। लेकिन दाढ़ी वाले ने उसे रोक लिया। उसके कहने से सिपाहियों ने अन्दर घुस कर सबको बन्दी बना लिया। प्रतापसिंह भौंचक्का खड़ा देखता रह गया।

लाचार प्रतापसिंह ने अपना अपराध शीकार कर लिया। अञ्जन, भस्म बगैरह जो उसने चुरा लिए थे, वे भी वापस कर दिए। यही क्यों, वह उदय के पैरों पड़ गया और बोला- "भैया! मैं तुम्हारा गुलाम हूँ। मेरे पास जो कुछ है सच तुम्हारा है। मेरी जान बख्श दो। बड़ी चूक हुई।" उदय को देख कर तीनों राज कुमारियों की जान में जान आ गई। क्योंकि उसीने अनेकों कष्ट झेल कर, बड़ी बड़ी मुसीबतों की परवाह न करके, जान पर खेल कर भी उनको बनाने की कोशिश की थी। वे उदय के पास दौड़ी आई। तीनों की आँखों से आँसू बहने लगे।

इतने में उन्होंने देखा कि उदय की एक बाँह कटी है। सच पूछा जाए तो इस हलचल में किसी का ध्यान उस और न गया था। अब दाढ़ी वाला राजकुमारियों के कहने से दौड़ा



हुआ गया और गुफा में पल भर में कटा हुआ हाथ उठा लाया। अञ्जन लगाते ही उदय का हाथ जैसे का तैसा हो गया।

और भी एक अजीब बात हुई। राक्षस के जादू से राजकुमारियों गूँगी बन गई थीं। लेकिन जब मैया की सूरत गायब हो गई तो राक्षस की माया छिन्न-भिन्न हो गई। इसी से उसका जादू चला गया और राजकुमारियाँ भी पहले की तरह बोलने चालने लगी।

इस तरह तीनों राजकुमारियों के साथ-साथ मालव-राज्य की लक्ष्मी को भी जीत कर उदय ने सानन्द श्रावस्ती नगर में कदम रखा।

दाढ़ी वाले ने निशीथ के सर और धड़ को जोड़ कर अञ्जनों के प्रभाव से उसमें जान फूँक दी।

सारे राज में आनन्द मनाया जाने लगा। राजा और रानी ने जुड़वा भाइयों की बहुत प्रशंसा की और अपना एहसान जताया। फिर महाराज ने तीनों बहनों को बुलाया और सुहासिनी का हाथ उदय के हाथ में, सुभाषिणी का हाथ प्रदोष के हाथ में और सुकेशिनी का हाथ निशीथ के हाथ में रख कर आशीर्वाद दिया। शुभ मुहूर्त में तीनों भाइयों का तीनों बहनों से विवाह बड़ी शान के साथ हो गया।

उसके बाद महाराज दानशील ने दाढ़ी वाले को मालव देश का राज देना चाहा। लेकिन दाड़ी वाले ने राज लेने से इनकार कर दिया। उसे राज-पाट की क्या जरूरत थी ! प्रताप के पश्चात्ताप प्रकट करने पर उसका राज उसे लौटा दिया गया।

फिर महाराज ने जुड़वा भाइयों से कहा कि "मेरा राज तुम तीनों आपस में बाँट लो।" लेकिन जुड़वा भाई यह नहीं चाहते थे।

तब दाढ़ी वाले ने उदय को उन तीनों अण्डों की याद दिलाई, जो उसने राक्षस की गुफा में पाए थे। दाढ़ी वाले की सलाह से उदय ने उन तीनों को एक-एक योजन के फासले पर फोड़ डाला और तुरन्त उन तीनों से सोने, चाँदी और हीरे-जवाहरात के तीन किले बन गए। तीनों भाई अपने बनाए हुए उन तीनों फिलों में सुख से रहने लगे।

लेकिन इतने आनन्द में भी उदय एक बात नहीं भुला सका। दुष्ट राक्षस के जादू में पड़ कर, जो लोग जान गँवा कर पत्थर की सूरतें बन गए थे, उनकी बाद उसके दिल में काँटे की तरह चुभ रही थी। उन अमागे वीरों की यादगार में उसने एक आलीशान महल खड़ा किया और उन सब मूरतों को उस महल में रखवा दिया।





श्यामपुर के विद्यालय के प्रधानाध्यापक जी बूढ़े हो गए थे। इसलिए वे स्वयं नौकरी से हट गए। जब प्रधानाध्यापक की जगह खाली हो जाती है तो अक्सर प्रथम सहाध्यापक ही उस जगह पर नियुक्त किया जाता है।

श्यामपूर विद्यालय में प्रथम सहाध्यापक थे श्री दशरथ मिश्रजी। उनके पति छात्रों की बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। ये बहुत अच्छा पढ़ाते थे। बीच-बीच में लड़कों को खूब हँसाते भी रहते थे। शरारत करने वाले और वर्ग में ऊँधने वाले उनकी पैनी नज़र से कभी बच नहीं पाते थे। वे ऐसे लड़कों की खूब खबर लेते थे।

सिर्फ विद्यार्थी ही नहीं, अन्य अध्यापक भी उनकी बड़ी इज्जत करते थे। वे सब उम्मीद रखते थे कि दशरथ मिश्रजी ही प्राध्यापक बनेंगे। इस शुभावसर के उपलक्ष्य में दावत देने के लिए उन सबने चन्दा भी जमा कर लिया था।

लेकिन हुआ यह कि मिश्रजी प्रधानाध्यापक नहीं बने और उनके बाद के दूसरे सहाध्यापक को भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। कड़ी के दस अध्यापकों को मुला कर भ्यारहवें अध्यापक श्री सुन्दर सिंह को प्रधानाध्यापक बनाया गया। जब यह बात अध्यापकों को मालूम हुई तो वे सब मन ही मन सोचने लगे कि यह तो बड़ी धाँधली हुई।

सुन्दरसिंह को प्रधानाध्यापक पद पर बिठाने के कारण कुछ और थे। बात यह थी कि वे उस उच्च पदाधिकारी के दूर के रिश्तेदार थे जिन को प्रधानाध्यापक को चुनने का भार सौंपा गया था। लेकिन प्रगट कारण यह बताया गया था कि बाकी सब अध्यापक बूढ़े हैं। सुन्दरसिंह जवान

कुसुम श्रीबास्तव



है, फुतला है और लड़कों को अच्छी तरह काबू में रख सकता है।"

अन्य अध्यापकों ने बहुत कुछ कहा-सुना कि "हम लोग सुन्दरसिंह से ज्यादा दिनों से काम कर रहे हैं, उससे अधिक अनुभव रखते हैं; हम लोग उस से ज्यादा उमर वाले तो जरूर है, लेकिन बूढ़े नहीं हैं। लेकिन उनकी कौन सुनता ? सुन्दर सिंह सूट-बूट पहन कर शान के साथ प्रधानाध्यापक की कुर्सी पर जा बैठा।

सुन्दरसिंह भाग्यवान तो जरूर था, मगर बैसा बुद्धिमान नहीं था। उसे चाहिए या कि अन्य अध्यापकों का आदर करता। क्योंकि वे सभी उससे उमर में बड़े थे और काबिल भी ज्यादा थे। कुछ दिन तक तो उसे खूब नम्रता से काम लेना चाहिए था। लेकिन उसने वैसा न किया। उसे मालूम था कि अन्य अध्यापकों ने दशरथ मिश्र को दावत देने का इन्तजाम पहले ही कर लिया था। इसलिए वह उन सब से खार खाए बैठा था। यह अब उन सब को बात-बात मैं दिक करने लगा।

"आप लोग समय पर नहीं आते हैं। आप के वर्गों में बहुत हो-हल्ला मचता रहता है। आप सब अच्छी तरह नहीं पढ़ाते हैं।" यह कह कर तरह तरह के बहाने बना कर यह एक एक को बहुत तङ्ग करने लगा।

लेकिन बात यहीं पर नहीं रुकी। वह उन लोगों के वर्गों में निगरानी करने भी जाने लगा। बात-बात में नुक्ताचीनी करने लगा। सुन्दर सिंह को उच्च पद तो मिल गया था। लेकिन वैसी योग्यता वह कहाँ से लाता ?

सब अध्यापकों से ज्यादा तो वह दशरथ मिश्र को सताने लगा। एक बार उसने उन्हें बुला कर कहा-"मुझे बरामदे से

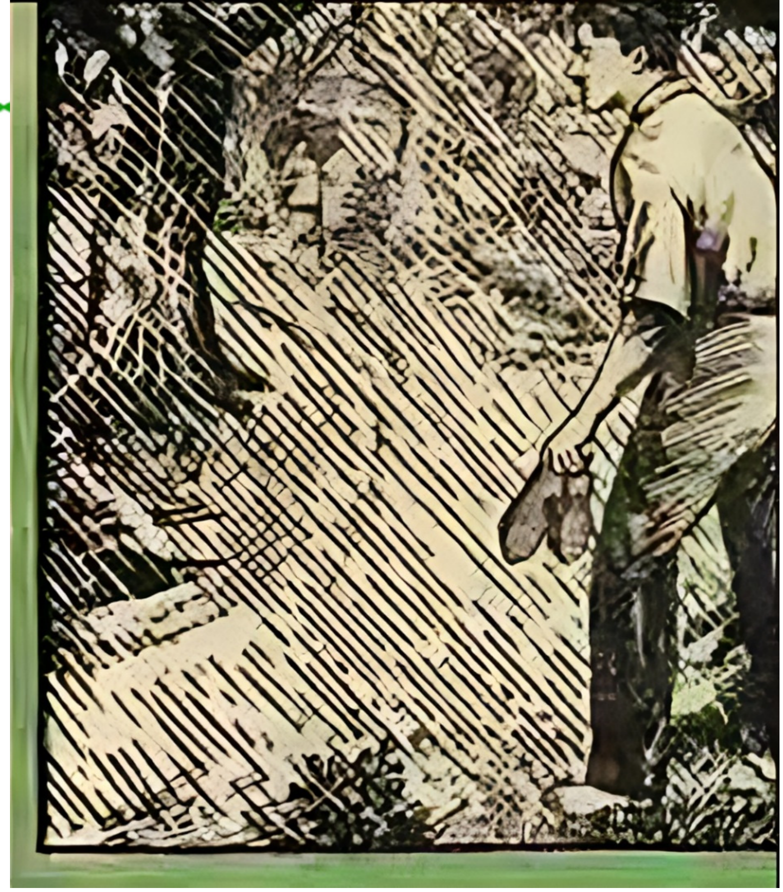
बाते देख कर भी आप कुर्सी पर से नहीं उठे। यह बड़ी बुरी बात है।"

और एक बार उस ने कहा-"कल बाजार में भेंट होने पर भी आपने मुझे प्रणाम नहीं किया !"

यह सुन कर मिश्रजी को बहुत गुस्सा या गया। फिर भी उन्होंने शान्त-स्वर में कहा-"भैया। तुम मुझ से उमर में छोटे दो। बड़ों को अपने से छोटी उमर बालों को प्रणाम नहीं करना चाहिए। इस से छोटों की आयु क्षीण हो जाती है !"

"ये सब के अन्ध-विश्वास हैं। मैं इन सब की परवाह नहीं करता। इस के अलावा उमर में छोटा होने पर भी मैं आप से पद में बड़ा हूँ। मैं प्रधानाध्यापक हूँ। आप सब मेरी मातहत में काम करने वाले हैं। इसलिए आप सब को मेरे बड़प्पन का ख्याल रखना चाहिए !" सुन्दरसिंह बोला। दशरथ मिश्र ने गुस्सा पी कर कहा-"बहुत बच्छा! आगे से यह सेवक अवश्य आपके आज्ञानुसार चलेगा।" इतना कह कर वे चले गए।

जब से सुन्दरसिंह प्रधानाध्यापक हुआ, तब से सभी बड़े हाकिमों की तरह वह भी शाम को रोज हवा



खाने जाने लगा। यह छड़ी घुमाते हुए, बड़ी शान के साथ चला करता था, जिस से लोगों की नजर उस पर पड़े।

एक दिन वह अपनी आदत के मुताबिक हवा खाने गया हुआ था कि सहसा बादल घिर आए और पानी बरसने लगा।

सुन्दरसिंह पानी से बचने के लिए सड़क के किनारे के एक पेड़ के तने की ओट में जा खड़ा हो गया। लेकिन जब बारिश न रुकी तो पेड़ पर से पानी की धाराएँ सीधे उसके सिर पर गिरने लगी। भीगने की उसे ज्यादा फिक न थी। फिक्र थी नए बूट

की। उन का उसे अफसोस जरूर था। आखिर उसने बूट उतार कर बाएँ हाथ में उठा लिए और एक झोंपड़ी की ओर दौड़ने लगा। इतने में उसने सुना कि कोई उसे पुकार रहा है-"प्रधानाध्यापक जी !" वह रुक गया। एक आदमी पुराना छाता लगाए उसकी ओर आ रहा था।

सुन्दरसिंह ने सोचा कि जरूर कोई जाना-पहचाना आदमी होगा। वह नहीं चाहता था कि बूट हाथ में लिए, यो पानी में भीगते हुए उसे कोई देख ले। लेकिन कोई चारा न था। आखिर उसने कुछ सोच कर जल्दी-जल्दी बूट पहन लिए। मन ही मन बहुत झुञ्झला रहा था कि यह कैसी बला है।

छाते वाला आदमी अब एकदम नजदीक आ गया था और वह दूसरा कोई नहीं, वही दशरथ मिश्र था। सुन्दरसिंह शरम से कट गया। वह सोचने लगा कि आग्रह करने पर वह छाते के नीचे जाए या न जाए। दशरथ मिश्र ने समीप आकर छाते की छड़ी को बगल में दबाया और हाथ जोड़ कर कहा-"नमस्ते। प्रधानाध्यापक जी !" बस, इतना कह कर वे उलटे पाँव वहाँ से चल दिए। पीछे मुड़ कर देखा तक नहीं।

सुन्दरसिंह जल-भुन कर खाक हो गया। दाँत चबाने लगा जैसे मिश्र को कच्चा ही चबा जाएगा। दूसरे दिन उसने उच्च अधिकारी से जाकर दशरथ मिश्र की शिकायत कर दी। उसने उलटे सुन्दरसिंह को फटकार कर कहा-"इस तरह रोब-दाब से तुम कितने दिन हुकूमत चलाओगे ? अपनी नम्रता से सब को जीत लो ! तभी सब लोग तुम्हारी बड़ाई करेंगे।

उस दिन से सुन्दरसिंह का रुख बदल गया। सारी शोखी हवा हो गई। अब वह कभी नहीं कहता कि लोग उसे जहाँ देखे, वहीं प्रणाम करें।





पुराने जमाने में किसी शहर में चार यार रहते थे। चारों गरीब थे और इस वजह से बहुत तङ्ग थे।

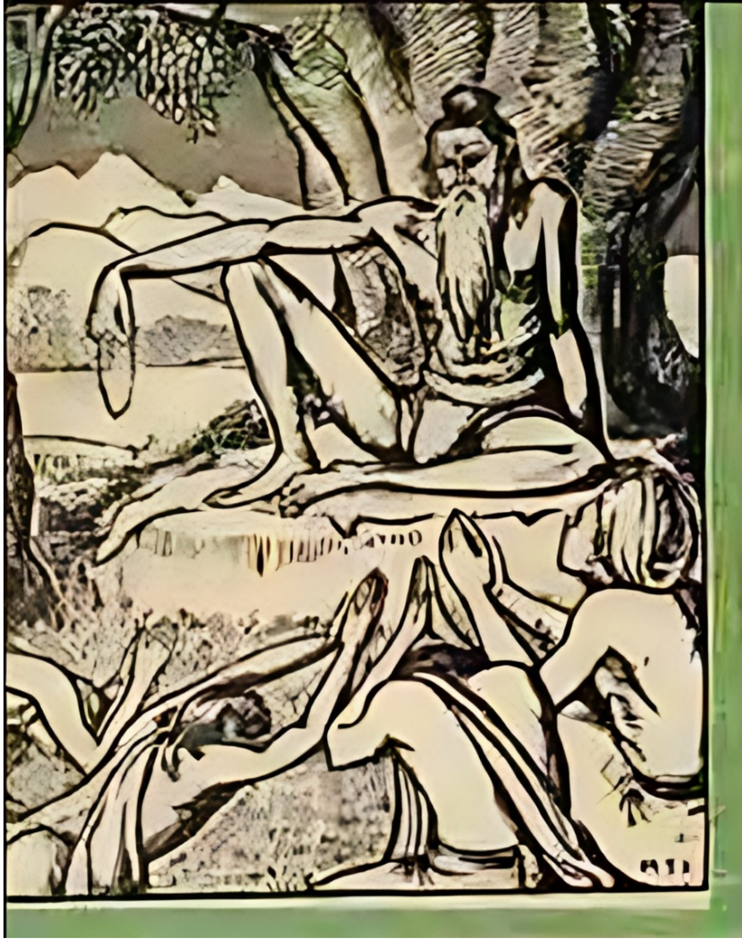
एक दिन उनमें से एक ने कहा- "भाइयो! मनुष्य चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो, कितना ही बुद्धिमान और साहसी क्यों न हो, उसके पास दौलत न हो तो उस की कोई इज्जत नहीं करता। जिस के पास पैसा नहीं, उसे देख कर रिश्तेदार भी मुँह फेर लेते हैं और भाग कर अपना पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। उसकी व्याहता भी उससे सीधे मुँह बात नहीं करती; बच्चे उस के प्रति आदर नहीं रखते। जिस के पास पैसा नहीं, उसके लिए समाज में जगह नहीं है। सचमुच दरिद्र होकर जीने से मर जाना ही अच्छा। इसलिए चलो, अब हम भी किसी न किसी तरह कुछ पैसा कमाने की कोशिश करें।"

उसकी बातें यारों को भाई। उन्होंने सिर हिलाया। बहुत सोचने पर पैसा कमाने का एक उपाय उन्हें सूझा। उन्होंने सोचा-"चलो, पहले हम सारे देश में घूम आएँ। कहीं न कहीं रोजी लग ही जाएगी।"

यह सोच कर चारों यार पर से निकले और जाते जाते अवन्तीपूर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपनी थकान मिटा ली और आगे बढ़ चले। थोड़ी दूर जाने के बाद उन्हें एक साधू दिखाई दिया। यारों ने बड़ी श्रद्धा से उसे दण्डवत किया और उसकी सेवा-टहल में लग गए।

वह साधू उनकी सेवा से बहुत खुश हुआ और कुशल-प्रश्न करके बोला- "बच्चो ! तुम लोग कहाँ जा रहे हो !"

यारों ने कहा -"भगवन्! हम लोग पैसा कमाने के इरादे से निकले हैं। हमने निश्चय कर लिया है कि या तो खूब पैसा



कमा कर घर लौटेंगे या यों ही भटकते-भटकते जान दे देंगे। क्योंकि गरीबी से हम एकदम तङ्ग आ गए हैं। गरीब बन कर हम अब जीना नहीं चाहते।" साधू ने उनकी बातें गौर से सूनी और कुछ देर ध्यान-मग्न हो गया। इसी बीच एक ने विनती की-"भगवन् ! यत्न किए बिना लक्ष्मी नहीं पाई जाती। कष्ट उठाए बिना सुख नहीं मिलता। हाँ, साधू-सन्तों की कृपा से सब कुछ सहज हो जाता है। आप कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे हमें गुप्तधन मिले। हम आपकी कृपा कभी नहीं भूलेंगे।"

आखिर उस साधू को उन पर दया आ गई। उसने अपने मन्त्र-बल से चार डण्डे बनाए जिनके सिरे बहुत नुकीले थे। उसने उन्हें यारों को देकर कहा-"बच्चो। हमें तुम पर तरस आ गया। लो, ये डण्डे पकड़ लो। इन्हें हाथ में पकड़े बिन्ध्याचल से उत्तर की ओर चलते जाना। राह में एक-एक का डण्डा जहाँ गिर पड़े, वहाँ खोदने पर उसे गुप्त धन मिलेगा। अब तुम लोग जाओ। भगवान तुम्हारा भला करे।" यों आशीर्वाद देकर साधू ने चारों को विदा किया।

डण्डे पाकर यार लोग फूले न समाए। अब उनके पैर धरती पर नहीं पड़ते थे।

साधू के आदेशानुसार वे लोग विन्ध्याचल से उत्तर की ओर चले। जाते-जाते एक मित्र का डण्डा नीचे गिर पड़ा। उस जगह खोदने पर उसको बहुत सा ताम्बा मिला। उसने मित्रों से कहा-"यारो ! चलो हम लोग यह ताँबा लेकर घर लौट चलें। इसे बेच लेंगे तो हमें बहुत सा पैसा मिल जाएगा और उसे चारों बाँट लेंगे। बस, हम लोगों की गरीबी दूर हो जाएगी।"

यह सुन कर यारों ने कहा-'अरे बेवकूफ ! ताँबे को बेचने से कितना पैसा

मिलेगा ? हम चारों आपस में बाटेंगे क्या ? हमारे साथ आगे चलो ! देखें और क्या- क्या गुल खिलता है !"

लेकिन ताम्बे-वाले ने इनकार कर दिया। उसने कहा-"मेरे लिए यह ताम्बा काफी।" यह कह कर वह लौट गया। तीनों यार उसकी हँसी उड़ाते आगे बढ़ चले।

थोड़ी दूर जाने पर दूसरे का डण्डा जमीन पर गिरा। यहाँ खोदा तो उसे बहुत सी चाँदी मिली। उसने भी कहा-"चलो, लौट चलें ! चाँदी आपस में बाँट लेंगे।" लेकिन बाकी दोनों ने इस बार भी लौटने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा-"अरे पगले ! पहली बार ताँबा मिला है, अब की चाँदी मिली है। आगे जरूर सोना मिलेगा। अभी लौट जाना एकदम पागलपन है।" यह कह कर वे दोनों हँसते हुए आगे बढ़ चले। चाँदी लेकर दूसरा मित्र घर लौट गया।

बाकी दोनों दोस्त कुछ ही दूर बढ़े थे कि तीसरे दोस्त का डण्डा भी जमीन पर गिरा। दोनों ने उत्सुकता से खोदा। सचमुछ वहाँ बहुत सा सोना दिखाई दिया। तीसरे ने कहा-"बस, यह सोना आपस में बाँट लें और घर लौट चले।"



लेकिन चौथा राजी न हुआ। उसने सोचा-"पहली बार ताम्बा, दूसरी बार चाँदी और तीसरी बार सोना ! अब की जरूर हीरे-जवाहरात मिलेंगे। यह सोच कर उसने दोस्त को लौटने दिया और अकेले आगे बढ़ा।

वह बड़ी दूर तक चलता गया। आखिर मूख-प्यास से बेहाल हो गया। थकावट के मारे पैर पत्थर जैसे भारी हो गए। घसीटते हुए कुछ दूर जाने के बाद आखिर एक जगह उसका डण्डा ज़मीन पर गिर पड़ा। बड़ी आशा से वह यहाँ खोदने लगा। बड़ी देर बाद अन्दर से धमाके की आवाज

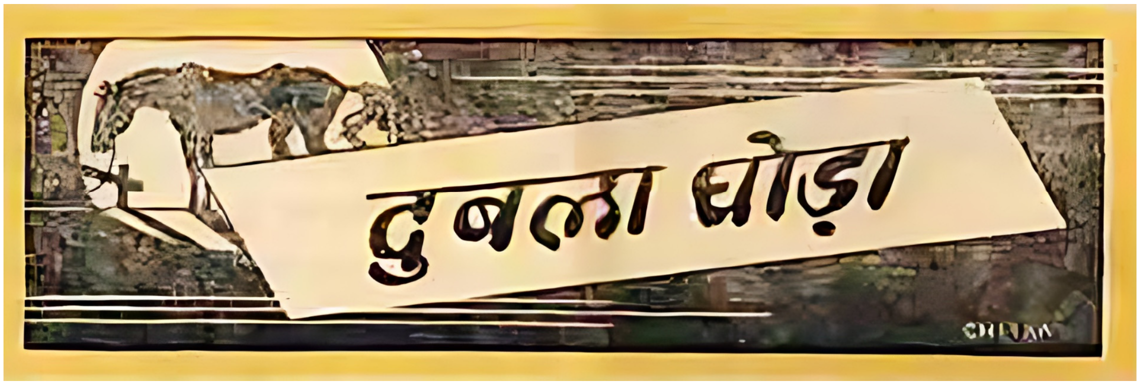
हुई और अचानक उस गढ़े से निकल कर एक आदमी उसके सामने आ खड़ा हुआ।

उस अजीब आदमी के सिर पर एक चक्र था, जो कुम्हार के चाक की तरह तेजी से धूम रहा था। उसके सारे बदन से खून बह रहा था। वह "हाय हाय!" कर रहा था। फिर भी उस चक्र को सिर से उतार कर जमीन पर रखने की कोशिश नहीं करता था। खोदने वाले ने अचरज के साथ पूछा-"भई, तुम्हारी यह क्या हालत है !" मुँह की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि यह चक्र उड़ कर उसके सिर पर जा बैठा और घूमने लगा। उसकी सारी देह लहू-लुहान हो गई और बहुत पीड़ा होने लगी।

यह लोभी यार अब तो हाथ जोड़ कर उस व्यक्ति से कहने लगा- "भैया! तुम ने यह कैसी बला मेरे सिर पर लाद दी। मेरी जान जा रही है। कृपा करके इस को मेरे सिर से उतार लो। मुझे हीरे-जवाहर कुछ नहीं चाहिए। सही-सलामत रहा तो भीख माँग कर पेट भर लूँगा। किसी तरह इस बला से मुझे छुटकारा दिला दो माई !" यह कह कर वह बेहद गिड़गिड़ाने लगा।

तब उस आदमी ने कहा-"भैया ! मैं भी तुम्हारी ही तरह एक मामूली आदमी हूँ। मैं मन्त्र-तन्त्र कुछ नहीं जानता। लालच के मारे आकर इस फन्दे में फँस गया। बता नहीं सकता कि क्या-क्या भुगतना पड़ा मुझे। मैं यहाँ आया द्वापर युग में। जाने, तब से कितनी सदियाँ बीत गई ! जिस तरह तुम्हारे आने से मुझे छुटकारा मिला, उसी तरह और किसी के आने पर ही तुम्हें छुटकारा मिलेगा। तब तक तुम्हें यह यन्त्रणा सहनी ही होगी। तुमने मुझे बड़ी बाफत से बचाया ! धन्यवाद !" इतना कह फर वह अपने पाव भरे सिर को सहलाता हुआ वहाँ से चलता बना।





जम्बू-द्वीप के बलभद्रपुर नगर पर विक्रम नाम का राजा शासन करता था। उसके लड़के का नाम माधववर्मा था। राजकुमार माधववर्मा बहुत खूबसूरत था। बहुत सी सुन्दरी राजकुमारियों के चित्र दिखाने पर भी उसने उनसे ब्याह करना मञ्जूर न किया।

एक दिन वह राजकुमार हिमालय की घाटियों में शिकार खेलने गया। बीच जङ्गल में ऐसा लगा जैसे कोई पुकार रहा है। उस ने पीछे मुड़ कर देखा तो एक सुन्दरी ने सामने आकर कहा-"हे राजकुमार ! मैं चन्द्रकला नाम की एक गन्धर्व कुमारी हूँ। तुम्हारी रानी बनने योग्य एक ही सुन्दरी है और वह है मेरी सखी सुलोचना। वह लक्ष द्वीप के राजा की बेटी है। तुम्हारे अस्तबल में एक सबसे दुबला घोड़ा है। उस पर चढ़ कर जाओगे तो तुम लक्षद्वीप की राजधानी दीप्त नगर में जा पहुँचोगे। वहाँ जाकर फूल बेचने वाली मालिन से मिलो। उसे मेरा नाम बता देना। बस, तुम्हारा काम बन जाएगा। गन्धव कुमारी की बातें सुन कर राजकुमार बहुत खुश हुआ और तुरन्त यहाँ से चलने लगा। लेकिन चन्द्रकला ने उसे रोक कर कहा-"ठहरो! पहले वादा करो कि व्याह होने के बाद तुम वह घोड़ा मुझे दे दोगे। मुझे उससे कुछ काम है।" जब राजकुमार ने वादा किया तो यह अदृश्य हो गई और राजकुमार चकित मन से घर लौटा।

घर आते ही सीधे वह अस्तबल में पहुँचा। उसे देख कर वह दुबला घोड़ा हिनहिनाने लगा। राजकुमार ने नजदीक जाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरा। बस, घोड़ा हृष्ट-पुष्ट हो गया। इतना ही नहीं; उसके पंख भी निकल आए। प्रचेस्त साईस जो वहाँ खड़ा था, यह देख कर दङ्ग रह गया। राजकुमार ने उसको सारा समाचार



सुना दिया। तब प्रचेष्ट ने कहा-"राज-कुमार! मुझे भी साथ ले चलो !" राजकुमार ने कहा-"अच्छा! चलो !" वह उछल कर घोड़े पर चढ़ गया। प्रचेष्ट घोड़े की दुम पकड़ कर लटकने लगा। घोड़ा आसमान में उड़ा और पल भर में दोनों लक्षद्वीप की राजधानी दीप्तनगर पहुँच गए।

राजकुमार माधवबर्मा घोड़े से उतर कर तुरन्त मालिन के घर गया। उससे सारा किस्सा कह दिया। मालिन सब कुछ सुन कर बोली "हाय ! तुम कल ही आते तो कितना अच्छा होता ! सुलोचना की शादी कुशद्वीप के राजकुमार से ठीक हो गई। कल ही लगन है। उसका नाम है विद्याधर। वह देखने में तुम्हारे जैसा खूबसूरत तो नहीं; लेकिन शादी तय हो चुकी है। अब बेचारी सुलोचना क्या कर सकती है !" तब प्रचेष्ट ने कहा-"इतनी दूर आने के बाद अब हम दुलहिन को देखे बिना कैसे लौटे ?" यह सुन कर गालिन एक टोकरी ले आई। उसने माधवबर्मा को उसमें बिठा दिया और उसे फूलों से ढ़ाँप दिया। प्रचेष्ट टोकरी उठा कर पीछे-पीछे चला। दोनों बेधड़क राज-महल में पहुँच गए।

माधववर्मा को देखते ही सुलोचना का हृदय बेकाबू हो गया। क्योंकि विद्याधर इस के सामने ऐसा लगता था जैसे सूरज के सामने तारा। उसने धीरे से मालिन के कान में कहा-"मालिन। में विद्याधर को नहीं चाहती। इनसे कहो कि कल विवाह-मण्डप में मैं इशारा करूँगी। ये तैयार रहे और घोड़े पर चढ़ा कर मुझे उड़ा ले जाएँ।" माधवबर्मा फूला न समाया और टोकरी में बैठ कर बाहर आ गया।

माधववर्मा के साथ प्रचेष्ट ने भी सुलोचना को देख लिया था न ! उसके मन में लालसा जगी कि किसी न किसी तरह सुलोचना से

वह ब्याह कर ले। इसलिए दूसरे दिन उसने राजकुमार के पीने के दूध में बेहोशी की दवा मिला दी। उसे पीकर राजकुमार गहरी मूर्छा में डूब गया। पचेष्ट घोड़े पर चढ़ कर अकेले लगन मण्डप में गया। राजकुमारी के इशारा करते ही उसने उसे घोड़े पर चढ़ा लिया और उड़ गया।

बेचारी सुलोचना को क्या पता ? उसने सोचा कि उसे माधववर्मा ही घोड़े पर उड़ाए लिए जा रहा है। प्रचेष्ट ने सागर पार करके काञ्चनपुर नाम के शहर के नज़दीक एक जङ्गल में घोड़े को उतारा और सुलोचना से कहा-"समय पर माधववर्मा सो गया ! मैंने सोचा, यह अभागा तुमसे शादी करने के लायक नहीं। इसलिए मैं ही तुम्हें उठा लाया तुम। मुझ से व्याह कर लो।"

सयानी सुलोचना ने अपने मन की हैरानी और चिन्ता उस विश्वासघातक पर प्रगट न होने दी। वह मुसकुराती हुई बोली-"कौन जाने, किसके भाग्य में क्या लिखा है। अच्छा, मुझे बड़ी भूख लगी है। यह कङ्गन ले जाओ और दूर से दिखाई देने बाले उस शहर में बेच कर खाने-पीने की चीजें खरीद ले



आओ।" मूर्ख प्रचेष्ट फूल कर कुप्पा हो गया और कङ्गन लेकर तुरन्त शहर की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर जब उसने कङ्गन बेचना चाहा तो चोर समझ कर राजा के सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और बन्दीघर में डाल दिया।

प्रचेष्ट ने ज्यों ही पीठ फेरी, त्यों ही सुलोचना घोड़े पर चढ़ गई और उड़ कर जम्बू द्वीप के काशी नगर में जा उत्तरी। उतरते ही उसे बहुत आश्चर्य हुआ। क्योंकि दिन होने पर भी सड़कों पर कोई आदमी दिखाई न देता था। उसने पूछ-ताछ की तो एक बुढ़िया ने कहा-"रोज़ ठीक दोपहर के बारह बजे गङ्गा किनारे से एक



गैण्ड़ा नगर में घुस आता है और जो भी दीख पड़ता है उसे मार डालता है। राजा ने घोषणा भी की है कि जो कोई इस गैण्ड़े को मार डालेगा, उसे वह अपनी बेटी के साथ आधा राज भी देगा।" इतना सुनते ही सुलोचना ने एक राजकुमार का भेष बना लिया और तलवार हाथ में लेकर गैण्ड़े की राह देखने लगी।

बारह बजते ही वह गैण्ड़ा धरती को कँपाता हुआ आ पहुँचा। सुलोचना ने ठीक उसकी गरदन पर तलवार चलाई। तुरन्त गैण्ड़ा गायब हो गया और उसकी जगह एक मुनि प्रकट होकर कहने लगे-"सुलोचना ! तुमने मुझे शाप मुक्त कर दिया है। अब जो चाहो माँग लो !" सुलोचना प्रणाम करके विनय सहित बोली-"मुनिवर ! मेरा ब्याह विद्याधर नाम के राजकुमार से निश्चित हुआ था। लेकिन माधववर्मा को देख कर में मुग्ध हो गई। इस तरह 'चौबे गए छब्बे बनने, तो रह गए दुब्बे होकर' वाली हालत हो गई मेरी। ऐसा वर दीजिए जिससे में फिर माधववर्मा को पा सकूँ।'

उसकी बात सुन कर मुनिवर ने कहा-"सुनो ! कुछ ही दिनों में माधववर्मा और विद्याधर दोनों एक जहाज पर चढ़कर हीरे-जवाहरात के व्यापारियों के रूप में यहाँ आयेंगे। उस समय तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। तुम्हें यह सोच कर अफसोस करने की जरूरत नहीं कि तुमने विद्याधर को धोखा दिया। क्योंकि उसने पहले ही काशीराज की पुत्री जयन्ती से विवाह करने का निश्चय कर लिया था। यह तुमसे व्याह करने को राजी हुआ था सिर्फ राज्य के लोभ से। अब उसमें और माधववर्मा में बड़ी मित्रता हो गई है। इसलिए तुम्हारी इच्छा पूरी होने में कोई दिक्कत न होगी।" सब सुलोचना ने कहा-"लेकिन भगवन् !

आपको गैंण्ड़े का रूप क्यों मिला ?"
"यह सब तुम्हें बाद में मालूम हो जाएगा !" इतना कह कर मुनिवर अदृश्य हो गए।

उनके अदृश्य होते ही सुलोचना पीछे मुड़ी कि घोड़े पर सवार हो जाए। लेकिन घोड़ा कहीं दिखाई न पड़ा। वह उसे चारों और ढूँढने लगी। इतने में काशी-राज को मालूम हो गया कि किसी राजकुमार ने गैंण्ड़े को मार डाला है। वे खुशी-खुशी हाथी पर चढ़कर आए और सुचना को जो पुरुष-भेष में थी, अपने साथ ले गए। राजा ने चाहा कि जल्दी इस वीर राजकुमार का जयन्ती से ब्याह कर डालें। लेकिन सुलोचना ने बहाना बना कर कहा कि-"एक जहाज आने वाला है। उसके आने पर ही व्याह हो सकेगा।"

राजा के नौकर गङ्गा के किनारे उस जहाज की राह देखने लगे। जहाज के आते ही सुलोचना को खबर पहुँचाई गई। उसने हुक्म दिया कि "व्यापारी आकर अपने हीरे जवाहरात उसे दिखाएँ।" वे तुरन्त अपना चुना हुआ माल लेकर राज-महल में गए। उन्हें देखते ही सुलोचना ने पहचान लिया कि दोनों



नौकरों में से एक माधबवर्मा है और दूसरा विद्याधर। उसने तुरन्त काशी-राज के पास जाकर कहा कि आज रात ही को व्याह का प्रबन्ध कीजिए और सब तरह के दो-दो गहने बनवाइए। राजा को बहुत अचरज हुआ कि दो-दो गहने किस काम आएँगे। फिर भी उसने तुरन्त सब तैयारियाँ कराई।

सुलोचना ने उस हीरे जवाहर के व्यापारी को बुला कर चुपके से कहा-"भैया ! तुम्हारे जो दोनों नौकर हैं वे दो राजकुमार हैं। आज ही रात को उन दोनों का ब्याह होने वाला है। इसलिए तुम जाओ और दोनों को बना-ठना कर बारात ले आओ।"

व्यापारी सिर हिला कर चला गया। उस रात मण्डप में दुल्हिन के लिए को आसन बिछाए गए। सवाल उठा कि यह दूसरी दुल्हिन कौन है? सब सुलोचना ने अपनी पगड़ी बगैरह उतार डाली और कहा-"मैं ही यह दूसरी दुल्हिन हूँ।" सब लोग दङ्ग रह गए। इतने में बारात आई। विद्याधर और माधववर्मा दोनों दूल्हे बने हुए थे। तब सुलोचना विद्याधर को जयन्ती के पास ले गई और बोली-"लो, यही तुम्हारे दूल्हा है।" सब लोगों ने उसे पहचान लिया और बहुत खुश हुए। क्योंकि पहले उसी के साथ उसका ब्याह तय हुआ था। इतने में कहाँ से चन्द्रकला भी वहाँ आ पहुँची। यह वही गन्धर्व कुमारी थी, जिसने माधववर्मा को पहले सुलोचना की बात बताई थी। उसके साथ और एक युवक गन्धर्व भी था। चन्द्रकला उसे दिखा कर हँसती हुई बोली-"लो, यही मेरे पतिदेव हैं। इनका नाम चित्राङ्ग है। इन्हीं ने उड़ने वाले घोड़े के रूप में आप सब को ढोया था। यह सुन पर सब लोग अचरज से पूछने लगे-"ये घोड़ा कैसे बन गए?"

तब चित्राङ्ग ने बताया-"एक बार चन्द्रकला और में दोनों बिहार करने गए। राह में एक मुनि को तप करते देख करें मैंने हँसी उड़ाई। इस से उस मुनि को क्रोध आ गया और उन्होंने शाप दिया-'तुम घोड़े की तरह हिनहिना रहे हो। इसलिए जाओ ! घोड़ा बन जाओ!' तब मुझे भी क्रोध आ गया और मैंने भी शाप दिया-'तुमने इतनी छोटी सी बात के लिए मुझे शाप दिया। इसलिए जाओ ! तुम भी गैंण्ड़ा बन जाओ !' बस, मुनि गैंण्ड़ा बन गए। उसी को सुलोचना ने मारा था। उसके मरते ही मुझे शाप से छुटकारा मिल गया। तब दोनों राजकुमारों और राजकुमारियों का व्याह हो गया।" गन्धर्व- दम्पति ने उनको आशीर्वाद दिया।



अक्षय वर

किसी समय द्विदर्भ देश पर भग्नकर्ण नाम का राजा राज करता था। उस बेचारे के बहुत दिनों तक कोई बाल बच्चे न हुए। जब भग्नकर्ण की उमर ढलने लगी और बुढ़ापा नज़दीक आने लगा, तब एक दिन हिमालय पर रहने वाले गजशृङ्गी नामक मुनिवर द्विदर्भ में पधारे। उनके आने की खबर सुन कर भग्नकर्ण ने सपरिवार उनका स्वागत-सत्कार किया। आखिर चरण धोकर चरणामृत पिया और प्रार्थना की-"आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।"

राजा की भक्तियुत सेवा से प्रसन्न होकर गजशृङ्गी ने कहा-"राजन! हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं। बोलो, क्या चाहते हो !"

तम राजा भग्नकर्ण ने कहा-"मुनिवर ! आपकी कृपा से मुझे किसी चीज की कमी नहीं। लेकिन वंश के उद्धार करने के लिए कोई पुत्र नहीं है। यही चिन्ता मुझे सता रही है। आप कृपा कर एक पुत्र दीजिए, जिससे इस लोक में मुझे पिता बनने का आनन्द प्राप्त हो और परलोक में पुन्नाम-नरक से रक्षा हो सके।"

प्रसन्न होकर मुनिवर ने राजा को पुत्र-प्राप्ति का वर दिया और कहा- "राजन् ! हम अभी जा रहे हैं। फिर तुम्हारे पुत्र के इक्कीसवें जन्म दिन को दर्शन देंगे।" यह कह कर गजशृङ्गी ने एक बोतल निकाल कर पाँवों में कोई लेप लगाया और आँख बन्द कर कुछ मन्त्र पढ़े। फिर क्षण में अन्तर्धान हो गए। जाते-जाते उन्होंने कुछ कहा; पर राजा को वह सुनाई नहीं पड़ा। क्योंकि वह जरा ऊँचा सुनता था।

एक साल भी पूरा नहीं हुआ कि भग्नकर्ण का एक पुत्र पैदा हुआ। सारे राज में बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाए गए। भोज-भण्डारे हुए और कई दिनों तक लगातार सदाब्रत

नीलकान्त शास्त्री



बँटते रहे। राजा ने शास्त्राचार के अनुसार अपने चिर-प्रतीक्षित पुत्र का 'शरगामी' नाम रखा। इकलौता बेटा होने के कारण शरगामी लाड़-प्यार की गोदी में पलने लगा। उसमें किसी के प्रति जरा भी श्रद्धा न थी। बात तो वह किसी की मानता नहीं था। ढलती उम्र में पैदा हुआ था वह। इसलिए राजा उस पर जान देता था। किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता था। कभी बोई साहस करके कुछ कहता भी था तो राजा सुनता नहीं था।

शरगामी के कारनामे उतने काले नहीं थे, जितनी तेज उसकी जवान थी। जो उस की लातों से नहीं घबराते थे, वे उसकी बातें सुनकर काँप उठते थे।

यों मनमाने ढङ्ग से शरगामी सयाना हुआ और उसका इक्कीसवाँ जन्म दिन आ पहुँचा। उस दिन बूढ़े राजा ने भरे दरबार में शास्त्राचार के अनुसार शरगामी को अपने आधे सिंहासन पर बिठा दिया। उस आनन्द के समय गजशृङ्गी अचानक वहाँ आ टपके। राजा भग्नकर्ण ने मुनिवर को पहचाना नहीं। शरगामी ने पूछा-"अरे! यह भिखमङ्गा कौन है ?इसे किसने आने दिया ?"

उसकी बात सुन कर मुनिवर को क्रोध आ गया। उन्होंने उपकारी को भूल जाने वाले उस राजा को और साधू का अपमान करने वाले उस नादान छोकरे को शाप देने के लिए कमण्डल से जल हाथ में लिया। यह देख कर राजा भग्नकर्ण डर से काँप उठा। उसने झट सिंहासन से उतर कर मुनि के पाँव पकड़ लिए और गिड़गिड़ा कर क्षमा-याचना की। तब जाकर गजशृङ्गी का क्रोध शान्त हुआ। बूढ़े राजा ने उनको अपने निकट ही एक ऊँचे आसन पर बिठलाया। त्यागी-तपस्वी विषय-विलासियों की तरह मुलायम गद्दों पर नहीं बैठ सकते। इसलिए गजशृङ्गी

उस आसन पर मृग वर्ग पिछा कर बैठ गए और शरणामी की तरफ घृणा के साथ देखने लगे। बात यह थी कि सरगामी ने धीमे स्वर में जो कहा था, उसे गजश्रृङ्गी ने सुन लिया था। फिर शरगामी ने उनसे क्षमा भी नहीं माँगी थी। राजा ऊँचा सुनता था इसलिए लड़के की बात यह सुन नहीं सका था। फिर भी गजश्रृङ्गी ने शान्त होकर शरगामी को इस बार क्षमा करने का ही निश्चय किया।

"राजन । हम तुम्हारे पुत्र को आशीर्वाद देने आए हैं।" गजश्रृङ्गी ने कुछ जोर से कहा जिससे राजा को साफ सुनाई पड़े।

"जी! आपकी कृपा!" राजा बोला।

हम तीन वर देने आए थे। लेकिन अब एक से अधिक देने की इच्छा नहीं रह गई है। क्या किया जाए ? इसका भाग्य ही ऐसा है।" गजश्रृङ्गी ने कहा।

तव भग्नकर्ण ने बेटे की तरफ मुड़ कर कहा-"बेटा! तुम महात्मा से वर माँगो!" लेकिन इतने में उसे शङ्का हुई और विनीत स्वर में मुनि से बोला-"मुनिवर! क्या इसके बदले में कुछ माँग लूँ !"

मुनि ने मुँह विचका कर कहा-"वह सयाना हो गया है। इसलिए उसे ही



माँगना होगा। अगर तुम उसे इशारा करोगे या कुछ सुझाओगे तो हमें बर्दाश्त नहीं होगा।"

सरगामी जो अब तक चुप बैठा था अचानक बोल उठा-"मुनिवर ! मुझे तीन बर चाहिए।"

"यह असम्भव है। हम तो एक ही बर देंगे। जैसा माँगोगे वैसा फल भुगतोगे !" राजश्रृङ्गी ने कहा। ज्यों ज्यों समय बीतता जा रहा था, त्यों त्यों शरगामी के प्रति उनकी घृणा बढ़ती ही जा रही थी।

"मैं तीन वर चाहता हूँ।" शरगामी जिद करने लगा।



तब मुनि की समझ में आ गया कि उन्होंने जो एक वर दिया था, उसी के अन्दर यह तीन पर माँग रहा है। उनका क्रोध बढ़ गया। "यह बड़ा अन्याय है।" वह बोले।

"इसमें अन्याय कुछ भी नहीं। मैंने एक ही वर माँगा। वह यह है कि मुझे तीन वर चाहिए। इसमें आपको कुछ शक हो तो इन पण्डितों से पूछ लीजिए।" शरगामी ने जवाब दिया।

पण्डितों ने इस विषय पर बहुत बाद-विवाद किया। अन्त में उन्होंने निर्णय किया कि "एक बर की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं हो सकती। क्योंकि छोटे से छोटे बर में भी अनेक बर छिपे रह सकते हैं। पुराने जमाने में यमराज ने सावित्री को बर दिया था कि सौ लड़के पैदा होंगे। याने वे सौ बरों के चराबर हुए। सत्यवान को जो प्राणदान दिया उसको मिला कर एक सौ एक वर हो गए। जब यमराज ही इसकी ठीक व्याख्या नहीं कर सके तो हमारी क्या बिसात ?" पण्डित लोग बोले।

आखिर गजशृङ्गी लाचार हो गए। "अच्छा ! जल्दी तीनों बर माँग लो।" उन्होंने कहा।

"मैं आपकी दाढ़ी-मूँछ सफाचट देखना नाहता हूँ।" शरगामी मुसकुरा कर बोला। दूसरे ही क्षण उस भरे दरबार में मुनिवर राजशृङ्गी की दाढ़ी-मूँछें गायब हो गई। सब लोग हाहाकार करने लगे। क्रोध-परवश होकर मुनि ने शाप देने के लिए जल हाथ में लिया।

यह देख कर शरगामी भी काँप गया। "आपकी दाढ़ी-मूँछ लौट आए।" उसने दूसरा वर माँगा।

यह सुन कर मुनि जरा शान्त हुए। "तुम्हारे दो वर खतम हो गए। अब एक



ही बर बच रहा। झटपट माँग लो।" मुनि ने कहा। "मुझे तीन वर चाहिए।" शरगामी ने कनखियों से देख कर कहा। गजश‍ृङ्गी के माथे पर पसीना छूट पड़ा। "तुम्हारे जैसा कृतघ्न मैने कहीं नहीं देखा। तुम इस तरह पर माँगते जाओगे और हम कब तक देते जाएँगे? क्या तुम्हारे लिए, हम अपने जप-तप छोड़ कर यहाँ पड़े रहेंगे ?" मुनि ने भर्राई आवाज में पूछा।

अन्त में तय हुआ कि शरगामी के वरों का लेखा-जोखा लिखने के लिए एक मुन्शी को नियुक्त किया जाए। तुरन्त एक मुन्शी नियुक्त किया गया। तब मुनि ने वचन दिया कि उनकी अनुपस्थिति में शरगामी जो जो वर माँगेगा, मिलते रहेंगे। यह वचन देकर वे अन्तर्धान हो गए। उस दरबार में एक क्षण भी रहना उनके लिए दुस्सह हो गया था। दिन बीतते गए। शरगामी ने आगे का ख्याल करके अनगिनत वर जमा कर रखे। मुनि उससे खार खाए बैठे थे। उसकी जबान से निकली हर मामूली बात को वे वर ही मानते थे और तुरन्त पूरी कर देते थे। जरा उमस होती और शरगामी सोचता- "ठण्डी हवा चले तो अच्छा हो।" तुरन्त इतनी ठण्डी हवा चलने लगती कि खून भी जम जाए। तब शरगामी हैरान होकर कहता-"मैं ऐसी हवा नहीं चाहता। बस, हवा बिलकुल बन्द हो जाती और उसका दम घुटने लग जाता। लाचार होकर उसे और एक वर माँगना पड़ता। कभी-कभी ऐसे दिन भी आते कि एक मिनट में उसके पाँच-पाँच वर यों ही चले जाते। जिस तरह शरगामी वर बढ़ाने की जिद लगा बैठा था, उसी तरह गजश‍ृङ्गी उन वारों को व्यर्थ करने की जिद किए बैठे थे।

इतना ही नहीं, धीरे-धीरे ऐसा मान होने लगा, जैसे मुनिवर ने यह निश्चय कर



लिया हो कि शरगामी को इन वरों से कुछ भी सुख या लाभ न पहुँचने देंगे। इसके लिए जो भी मौका मिलता, उसे वे बेकार नहीं जाने देते। अगर कभी शरगामी सोचता कि काश! इस समय मैं किसी बन में किसी झरने के किनारे बैठा होता।" तो तुरन्त वह अपने को वहाँ बैठा पाता; पर साथ ही उस के चारों ओर शेर चीते आदि भी दहाड़ते दीख पड़ते। अगर कभी सोचता कि मुझे एक इन्दुमुखी सुन्दरी चाहिए तो चन्द्र-वदना युवती तो उसे मिल जाती; लेकिन उसकी बाकी देह कोढ़ या ऐसे ही किसी घृणित रोग से पीड़ित पाई जाती।

यही क्यों ? शरगामी को अपने मन का हरेक विचार बहुत सोच-समझ कर प्रकट करना होता। नहीं तो कभी-कभी बहुत दर्दनाक नतीजा उसे भोगना होता। इस कारण से शरगामी को दूसरों से बातें करते वक्त भी पुरानी आदतें बदलनी पड़ी। उदाहरण के लिए एक बार किसी मामले में एक सौदागर से बातें करते वक्त उसके मुँह से निकल पड़ा-"हम दोनों फिर मिलेंगे।" इसका नतीजा यह हुआ कि ये दोनों सचमुच ही एक दूसरे से चिपट गए। तीन वर माँगने पर इस बला से उसका पिण्ड छूट सका। इसीलिए शरगामी को भोजन करते वक्त भी माँग-माँग कर खाने की आदत छोड़ देनी पड़ी। नौकर-चाकरों से काम करवाने में भी उसे वर खर्च करने पड़ते थे।

इस तरह मुनिवर गजशृङ्गी और शरगामी के बीच ऐसा दीर्घ संघर्ष चला कि धीरे-धीरे उसी में उन दोनों को कुछ मज़ा आने भी लगा हो तो ताज्जुब की कोई बात नहीं। शरगामी की मित्र मण्डली जब उससे दूर रहने लगी। क्योंकि वह उन्हें खतरनाक आदमी सा जान पड़ने लगा। उसके नौकर-चाकर जितने थे, सबकी जान हमेशा जोखिम में रहने लगी।

कभी-कभी शरगामी अपने नौकरों पर झल्ला उठता-"अरे ! तू कहाँ मर गया ! जाओ भाड़ में ! उल्लू कहीं का। तू तो निरा गधा है।" इत्यादि। बस उसकी सभी बातें सत्य साबित हो जाती और वे नौकर उसकी गालियाँ खाकर भयङ्कर यन्त्रणा के पाले पड़ जाते। अन्त में वरों के प्रभाव से वे मुक्त होते। इस सिलसिले में उन्हें भयानक पीड़ा तो सहनी ही पड़ती।

शरणामी के बारे में अजीब-अजीब खबरें सारे देश में फैल गई। कोई राजकुमारी उससे ब्याह करने को राजी न हुई। किसी राजा को यह साहस न हुआ कि उसे अपना दामाद बनाए।राजवंशों की स्त्रियाँ तो शरगामी को अपने आस-पास फटकने ही नहीं देती।

अन्त में शरगामी ने अपने मन-बहलाव के लिए तरह-तरह की क्रीड़ाओं का आविष्कार किया। उन खेलों में दूसरों की जरूरत ही न थी। उन्हें अकेले ही खेला जा सकता था।

अब तो इन खेलों में ही उसका सारा समय बीतने लगा। उधर मुनिवर के दिए हुए लाखों वर बेकार पड़े थे। उनके द्वारा आनन्द पाने की आशा



कोई उसे नहीं थी। मुनिवर राजभृङ्गी अच्छा बदला ले रहे थे।

एक दिन शाम को शरगामी अकेले बैठे-बैठे अपने-आप पचीसी जैसा एक खेल खेल रहा था। उस खेल के लिए एक वर्गाकार तखीर होती थी, जिसमें अनेक छोटे-छोटे वर्ग होते थे। पासा फेंक कर प्यादे को इन बर्गों में से आगे बढ़ाना होता था। उस तखीर में कई जगह सीढ़ियाँ होती थीं और कई जगह साँप होते थे। प्यादा सीढ़ियों पर पहुँच जाता तो सीधे ऊपर चला जाता। साँप के मुँह में चला

जाता तो सीधे नीचे उसकी पूँछ तक उतर जाता ।

आज न जाने, भाग्य कैसा था कि शरगामी का प्यादा सरासर ऊपर चलता गया। सीधे ऊपर याने वैकुण्ठ तक पहुँच गया। वह हरेक सीढ़ी पर चढ़ता गया। पर कहीं साँप के पाले नहीं पड़ा। शरगामी को बहुत आनन्द हुआ।

उसने धीरे से कहा-"ऐसा मौक़ा फिर मिले तो ?"

तुरन्त दूसरा खेल शुरू हुआ उसे फिर वैसा ही मौका मिला। अन्त में उसने फिर कहा-"ऐसा मौका फिर मिले तो ?" बस, ऐसे ही होता गया। इतने दिन बाद बेचारा शरगामी मुनिवर जी के चंगुल में फँस गया था। उस के वर एक-एक करके खर्च होने लगे। वह बार बार खेलता और अन्त में कहता-"ऐसा मौका फिर मिले तो !"

इस तरह बार-बार यह मौका मिलता ही गया। वह अपने बिछाए जाल में आप ही फँस गया था।

बूढ़ा राजा चल बसा। नया राजवंश प्रारम्भ हुआ। युग-युग बीत गए। कितने ही तूफान आए कितने ही भूचाल आए। द्विदर्भ का राज बार-बार उजड़ा और बसा। अन्त में माता पृथ्वी ने उसे अपनी छाती में छिपा लिया और अपने हरे आँचल से ढक दिया। फिर भी शरगामी अपने गुप्त मन्दिर में बैठ कर वहीं खेल खेलता रहा और आज भी खेल ही रहा है। कोई नहीं जानता कि उसके ये वर कब चुक जाएँगे। शायद हिमालय पर बैठे हुए मुनिवर गजशृङ्गी जानते हो !

शरणामी जो खेल खेल रहा है, उसे 'वैकुण्ठ-पचीसी' कहते हैं। जिस तखीर पर यह खेल खेला जाता है, उसे 'परमपद-सोपान चित्र' कहते हैं। यह खेल आज भी सारे दक्षिण में खेला जाता है ।





पुराने जमाने में किसी समय शेषनाग की शैया पर लेटे हुए भगवान विष्णु अचानक उठे और न जाने कहाँ गायब हो गए। देवी लक्ष्मी से उन्होंने कुछ कहा भी नहीं। इससे लक्ष्मी को बहुत अचरज हुआ और ये बहुत घबराई। सारे बैकुण्ठ में कोलाहल मच गया। लक्ष्मी ने आखिर ब्रम्हा और शिव को खबर भेजी।

सब लोग यों घबरा ही रहे थे कि भगवान विष्णु लौट आए और चुपचाप यथावत् अपनी सेज पर लेट रहे। लक्ष्मी ने मन ही मन सोचा- "मुझसे बिना कहे सुने ही चले जाने और फिर तुरन्त ही लौट आने की वजह क्या हो सकती है ?" फिर उन को अपनी घबराहट की बात याद आई और चुप रह गई। लेकिन महादेव जी, जो तब तक वहाँ पहुँच गए थे, चुप नहीं रह सके। वे पूछ बैठे-"बात क्या हुई !"

इस पर भगवान विष्णु बोले-"कोई खास बात तो नहीं थी। अच्छा सुनिए-मुक्तेश्वर गाँव में 'रामयोगी' नाम का एक भक्त रहता है। यह मार्जाल-किशोर-न्याय के अनुसार बिलकुल मुझ पर ही भरोसा रखता है। रामयोगी के पास एक गाय है। रस्सी तुड़ा कर वह पड़ोसी विशेसर के खेत में जा घुसी। रामयोगी गाय को ढूँढता चला। सारे गाँव में इधर-उधर खोजा। अन्त में जब तक वह गाँव के बाहर खोजने चला। तब तक विशेसर ने गाय को मार-पीट कर भगा दिया। रामयोगी ने यह देख कर कहना चाहा कि अबोध पशुओं पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। इतनी सी बात पर विशेसर को गुस्सा आ गया और उसी हण्डे से रामयोगी की मरम्मत करने लगा। बेचारा रामयोगी एक-एक बार सहते हुए 'नारायण ! माधव ! मुरारे!' कह कर मुझे पुकारने लगा।

मृदुला काश्यप

यही उसकी पुकार मेरे कानों में पड़ी। बस, मैं दौड़ पड़ा।"

"फिर इतनी जल्दी लौट क्यों आए?" सब ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

इस पर भगवान विष्णु कहने लगे- "जब तक में पहुँचा, तब तक दृश्य ही बदल गया था। मेरे भक्त ने विशेसर का डण्डा छीन कर उसी को पीटना शुरू कर दिया था। क्रोध के आवेश में वह मुझे भूल गया था और मर्कट- किशोर-न्याय के अनुसार काम करने लग गया था। मैंने सोचा कि इस झगड़े में अब मुझे पढ़ने की जरूरत नहीं रह गई। बस, मैं तुरन्त लौट आया।" यों किस्सा समाप्त होते ही सब लोग उठ कर चले गए। लेकिन यह किस्सा लक्ष्मी की समझ में ठीक-ठीक न आया। वे बोली-"नाथ ! आपने 'न्याय न्याय !' कह कर कुछ बताया ! मेरी समझ में ठीक-ठीक नहीं आया। जरा समझा तो दीजिए!"

इस पर भगवान कहने लगे-"मेरा भक्त पहले मार्जाल-किशोर-न्याय के अनुसार मुझ पर ही भरोसा रखता था। यानी बिल्ली का बच्चा हमेशा अपनी माता पर ही भरोसा रखता है और माता सदा उसे सङ्कटों से बचाती रहती है। कहीं जाना भी होता है तो उसे दाँतों से पकड़ कर उठा ले जाती है। इसी से मक्त की पुकार सुनते ही में दौड़ा। लेकिन इतने में मेरा भक्त मर्कट-किशोर-न्याय के अनुसार चलने लगा। यानी बन्दर का बच्चा अपने ही बल पर माता से चिपटा रहता है। अगर जरा भी उसकी पकड़ ढीली पड़ी कि वह जोखिम में पड़ा। वह अपने ही हाथों पर भरोसा रखता है; इसलिए माता की उसके प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं रहती। रामयोगी अपने ही चल पर विशेसर से निपटने लगा। इसलिए में उलटे पाँव लौट आया।" भगवान की बातें सुन कर देवी लक्ष्मी बहुत खुश हुई।

